

प्रकाशक—

पञ्चाटाल पाकलीवाल

महामंत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

१ विश्वकोषटेल, बापडाबार, कलकत्ता ।



मुद्रक—

श्रीजाल जैन वाक्यमीर्य

जैनसिद्धांत प्रकाशक पवित्र भेस,

१ विश्वकोषटेल, बापडाबार
कलकत्ता ।

निवेदन ।

संस्थाके मूलसंस्थापक उम्मानाबादनिवासी सीमान् सेठ नेमिचंद्र बालचंद्रजीने अपने पूज्य पिता गांधी कस्तूरचंद्रजीके सुपुत्र, बालचंद्रजीके स्मरणार्थ दो हजार एकरूपया प्रदान किया था और उसमे योगान्तरजी वीरनिर्वाण संवत् २४४४ में प्रकाशित हुये थे । कालक्रममे उन् प्रत्यकी आई न्योछावरसे यह "धर्मशास्त्र" प्रथम प्रकाशित गया है ।

यह प्रथम मूल और संस्करण निम्नलिखित व्यक्तिमे बीस वर्ष पहिले अथवा उन्निवृत्ति के समय में प्रकाशित हुआ था किन्तु उनका नाम विना मूल्य विना विचार के ही प्रकाशित हो गया था । उन्ने प्रकाशित करने के लिये बहुत ही मेहनत की थी । उन्ने प्रकाशित करने के लिये बहुत ही मेहनत की थी । उन्ने प्रकाशित करने के लिये बहुत ही मेहनत की थी ।

इसके लिये बहुत ही मेहनत की गई थी । उन्ने प्रकाशित करने के लिये बहुत ही मेहनत की थी । उन्ने प्रकाशित करने के लिये बहुत ही मेहनत की थी ।

भोलू लाल

प्रस्तावना ।



(प्रथम संस्करणकी)

प्राचीन समयके अनेक अधिगण प्रस्तावना (शास्त्र बनानेका कारण व उद्देश्य) आजकलकी तरह मंदीर आदिमें न लिखकर तबके अन्तमें भजने कुछ परिवर्णसहित रचन (प्रस्तावना) लिखने दे, इसकारण इन मूल मंदीर प्रस्तावना की प्रचलनविधाने प्राचीन रीत्यनुसार पुष्टिके अन्तमें लिखी है । परंतु आजकल प्रायः समस्त देशोंके विद्वान् मंदीर प्रस्तावना व रचयिताका उपलब्ध इतिहास ग्रन्थ आदिमें ही लिखते हैं, और आजकलके पठकनग को प्रबलक प्रस्तावना नहीं पढ़ लेते, तबनक ग्रन्थके पढ़नेमें आनी कृषि ही नहीं दिखाने इसकारण हम भी नयम मूल ग्रन्थचरित्रकी अन्त वन (जिसमें रचयिताका कुछ परिवर्ण भी है) मूल उलटिा रखते हैं । तो पठक मद्राश्योंको चाहिए कि न देकर एक ही बार अवश्य ही पढ़ ले ।

सिद्धन्तव्यानिधिगामाभी श्रीवीरसेनाऽमनि सूरिवर्यः ।
श्रीमाधुराया परिमिता वरिष्ठ कथावधिष्वसनिधौ पट्टिष्ठः ॥ १ ॥
ध्वस्ताशेषान्तपुन्निमदस्या तस्यान्मूरिर्वैद्यसेनाऽमनिष्ठः ॥ लोको-
द्योती पुण्यशलादिवाकं शिष्टाभीष्ट इधेयसाऽवास्तशायः ॥ २ ॥
भासिनास्त्रिजगदार्थसमूहा निर्मलाऽमितगतिर्गणनायः ॥ वासरो
दिनमणोरिव तस्याध्यायते स कमलाकरबोधी ॥ ३ ॥ नेमिपेणगण-
नायकस्वतः पावन वृषमधिष्ठितो त्रिभुः ॥ पार्वतोपतिरिवास्तवग्रयो

गोपनीयते गद्यनिबन्धः ॥ ४ ॥ कोपनियारी शानदनधारी
व्यसनेन प्रयतिरस्त्रेण ॥ सोऽनघदस्माद्भजितमदोष्मा यो यति-
तः प्रगामिषन्तारः ॥ ५ ॥ धनपरीक्षामहता परेषां धर्मपरीक्षा-
विजलरश्मया । निष्प्रवृत्ति "अनागतमिति" नामा तस्या पट्टिष्ठोऽ-
न्यतिथान्ता ॥ ६ ॥ दश स्यात्तुष्टिपदा वराधि वजात् प्रह-
र्षं स्वयम्भवा स्नादिना वि ॥ ७ ॥ सुहृन्मित्रं सुजनगात्रं न स्वस्थ-
कृतं स्वयं न स्वयन्निमित्तं ॥ ८ ॥ पुत्रिः पुराणा
कथा न सुवनं न सुवनं ॥ ९ ॥ सुमेदि । भवति भवति
भवति भवति न सुवनं ॥ १० ॥ पुत्रास्तन्मु-
क्ता न सुवनं दा तान् ॥ ११ ॥ सुवनं वा सुवनं वा वि
॥ १२ ॥ सुवनं वा सुवनं वा वि ॥ १३ ॥ सुवनं वा सुवनं वा वि

१५ ॥ सतसरुदाश्रयज्ञा माप्यते तेन कीर्तिर्बुधमंतमनयं शुष्यते
 तेन तत्त्वं । इदयसद्वनमध्ये धूतमिष्यान्धकारो जिनपतिमठदीपो
 क्षीय्यते पश्य क्षीमः ॥ १६ ॥ यदनि पठति भक्त्या यः शृणोत्येक-
 वित्तः स्वपरसमयतरावेदि शास्त्रं पवित्रं । विदितसकलतत्त्व-
 केपलालोकनेष्विदं शमद्विषादो पात्यसौ मोक्षजहमी ॥ १७ ॥
 यमो जैतोऽप्यपि ज्ञो प्रभवतु भुवने सर्वदा शर्मदायी, शान्तिं प्राप्नोतु
 लोको घरणिमवनिषाः न्यायतः पालयन्तु ॥ दत्त्वा कर्मास्त्रिर्ग-
 यमनियमशरैः साधयो यान्तु सिद्धिं, विष्यस्ताशुखशोभा निजदि-
 तनिरता जन्तवः सन्तु सर्वे ॥ १८ ॥ याचतस्मात्परयोपितो जलनिधि
 दिक्षुष्यंति धीर्धामुजैः मतरि सुषयोधरा, हृतरथा भीनेक्षणा वा-
 हना ॥ नावसिधुनु शार्वमेवदन्तव तोगीनले कोविर्धर्मार्धमवि-
 चारैरनुदिन व्याप्याप्नोत मुदा ॥ १९ ॥ सद्यःमराणां विगते
 सदृष्टं समन्ततो विक्रमगर्भिरस्य ॥ २० ॥ निर्विघ्नान्धमन समातं
 जिज्ञेद्बुधमार्गमितर्गुनिशास्य २० इति प्रज्ञस्तव ॥

यत्तु यत्तु ॥ १५ ॥ सतसरुदाश्रयज्ञा माप्यते तेन कीर्तिर्बुधमंतमनयं शुष्यते
 तेन तत्त्वं । इदयसद्वनमध्ये धूतमिष्यान्धकारो जिनपतिमठदीपो
 क्षीय्यते पश्य क्षीमः ॥ १६ ॥ यदनि पठति भक्त्या यः शृणोत्येक-
 वित्तः स्वपरसमयतरावेदि शास्त्रं पवित्रं । विदितसकलतत्त्व-
 केपलालोकनेष्विदं शमद्विषादो पात्यसौ मोक्षजहमी ॥ १७ ॥
 यमो जैतोऽप्यपि ज्ञो प्रभवतु भुवने सर्वदा शर्मदायी, शान्तिं प्राप्नोतु
 लोको घरणिमवनिषाः न्यायतः पालयन्तु ॥ दत्त्वा कर्मास्त्रिर्ग-
 यमनियमशरैः साधयो यान्तु सिद्धिं, विष्यस्ताशुखशोभा निजदि-
 तनिरता जन्तवः सन्तु सर्वे ॥ १८ ॥ याचतस्मात्परयोपितो जलनिधि
 दिक्षुष्यंति धीर्धामुजैः मतरि सुषयोधरा, हृतरथा भीनेक्षणा वा-
 हना ॥ नावसिधुनु शार्वमेवदन्तव तोगीनले कोविर्धर्मार्धमवि-
 चारैरनुदिन व्याप्याप्नोत मुदा ॥ १९ ॥ सद्यःमराणां विगते
 सदृष्टं समन्ततो विक्रमगर्भिरस्य ॥ २० ॥ निर्विघ्नान्धमन समातं
 जिज्ञेद्बुधमार्गमितर्गुनिशास्य २० इति प्रज्ञस्तव ॥

पवित्र धर्मके अधिष्ठाता विष्णु. पार्वतीनाथके सरस कामदेवको नष्ट करने-
 वाले, मन बचन कायको दशमें करनेवाले, मुनि अश्विना धावक धाविकाके
 संघसे पूजित एक नेमिसेन नामक आचार्य हुए ॥ ४ ॥ उन नेमिसेन आ-
 चार्यके शिष्य, कोपनिबारी, रामदमधारी, प्रकपताकर नम्रताका है रस
 जिनमें, मद (गर्व) को दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, रामन कर दिया है
 मन्मथ जिन्होंने ऐसे एक माधवसेन नामा आचार्य हुए ॥ ५ ॥ उन
 माधवसेनाचार्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक शमितगति नामा
 चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेके लिए सबको शरणकर यह श्रेष्ठ
 धर्मपरीक्षा बन ई है ॥ ६ ॥ यह धर्मपरीक्षा मुझ अन्वहने बनाई है ।
 इसमें जो कुछ विरुद्ध व कथ हो तो स्वपर शास्त्रको जाननेवाले शोध कर
 धारण करो । क्या ऊंची बुद्धिके धारक विद्वज्जन सारासारको समझकर
 तुमको ठोठ मर्त्य समूहका ही ग्रहण नहीं करते ? ॥ ७ ॥ "प्राचीन कविता
 ही सुखद व है नवान कविता सुखदायक नहीं" युद्धम नेकी इसप्रकार
 कदापि नहीं समझन च शिवा, धूलोय प्रावर्ष नय नये फल भते हैं
 तो क्या वे पड़िले वयके फलो मरीखे श्रेष्ठ व सिध्य नहीं होने ॥ ८ ॥
 तथा कोई धर्म कि पु. जीको छ'डकर पु. ोमे अवसर हव यह ग्रन्थ
 ग्रहण करनेमें नहीं आ सकना सा यह कहना सायक नहीं करोकि
 सुबोधम श्रद्धासम निकल हवा नी. व महाभूमि म नही विकला ॥ ९ ॥
 मने इस पुस्तकमें जो अन्वयनके शास्त्रोंके विचार कर है, तो बुद्धिका
 गाव प्रकट करने कथका रक्षण करने नहीं आ है किन्तु जो धर्म शिव-
 सुखर दिनवला है केवलमय ठम धन वरीश करनेके निमित्त ही
 यह परिश्रम किया गया है ॥ १० ॥ 'वधु' यह देव भदिने तो मेरा कुछ न
 हरन नहीं कर लिया है, अनेक नवानने मुझे कुछ दे नही है

विषय, कोपना व कुछ कोपना योग्य वृत्तों का अर्थ समझना ही है।
 यदि है, तो उसने योग्यता के लिये मायावृत्तों में भी अशुद्धि नहीं
 की होगी, वरन् क्या किया जाय मायावृत्तों में १५ महीने तक मेरे नामों को
 मानने के कारण लाया पीछे इतनी कोपना की गई, तो सब माया समा करेगी,
 और इस संशय का अन्तर ही एक दो बार स्वामय कर जायें ऐसी श्रुति
 प्रार्थना है ।

मुम्बई
 सं. १९५७
 वि. माघ सुदी १.

जैगी मायाजी का दण,
 पद्मालाल दा. दि. मैत्र.





श्रीचीतरागाय नमः

धर्मपरीक्षा भाषा ।

दोहा ।

पंचपरमपद बंदि कर, धर्म परीक्षा ग्रन्थ ॥

लिखूं वचनिकामय सरल, जो शिवपुरका पन्थ ॥ १ ॥

जिनके ज्ञानरूपी दीपकने तीन वातबलयरूपी उत्तंग मनाहर काटवाले इस जगतरूपी गृहको चारों तरफसे उद्योत रूप किया; वे तीर्थंकर भगवान हमारे कल्याणरूपी लक्ष्मीके कारणरूप हैं ॥ १ ॥ सपरत कर्मोंके नाश होनेपर अतिप्रवित्र प्रगट हुये निजस्वरूपको प्राप्त होकर जो तीन लोकमें शिरोर्भाषा भूत होते हैं, वे सिद्ध भगवान मेरी मुक्तिकेलिये कारणभूत हैं ॥ २ ॥ जिनके वचनरूपी किरणोंसे भव्यपुरुषोंके मनरूपी कमल एकवार प्रफुल्लित होकर फिर निद्राको (संकोचभावका) नाश नहीं होने, और जो दोषोंके उदयको ही नहीं हान देते अर्थात् नष्ट कर देते हैं, वे आचार्योंमें मुख्यममान आचार्यपरमेष्ठी मेरी चर्याको निर्दोष करा ॥ ३ ॥ जैसे भक्तिमान पुत्रको मातापिता धनादिक सम्पत्तियें प्र-

रूप ही प्रकार हो जाता है ॥ २० ॥ इस भरत क्षेत्रके मध्य
 अनेक रमणीय स्थानोंकर संयुक्त पूर्वके समुद्र तटसे लेकर
 पश्चिम समुद्रके तट पर्यन्त लम्बा (यहाँ तक चक्रवर्तीकी
 आधी विजय होनेके कारण) ययार्थ नामका धारक विज-
 यार्द्ध नामा पर्वत है, सो कैसा शोभता है कि पानों अपना
 देह पसारकर जेप नाग ही पड़ा है ॥ २१ ॥ वह विजयार्द्ध
 बड़ी हुई अगनी किरणोंके समूहसे नाश किया है महा
 अन्यकार जिनने ऐसा प्रकाशमान होता हुआ पृथिवीको भे-
 दकर निकले हुये दूसरे सूर्यके सदृश शोभाको प्राप्त हो
 रहा है ॥ २२ ॥ इस विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर और दक्षिण
 नाग विद्याधरोकर सेवनीय दो श्रेणी हैं, सो कैसी हैं कि
 श्रवण करने योग्य मनोहर हैं गीत जिनके ऐसे, भ्रमणोंकर
 मस्तिन इन्नाके दोनों गण्डस्पलावर मानो बदरेखा ही है
 ॥ २३ ॥ उनमेंसे दक्षिण श्रेणापर ५० और उत्तर श्रेणी-
 पर ६० इसप्रकार ११० निद्रोंष कानिवाले विद्याधरोंके
 नगर द्वादशानके ज्ञाना गणधर भगवान् ने कहे हैं ॥ २४ ॥
 सो यह उत्तम विजयार्द्ध पर्वत विचित्र प्रकारके पात्र (पूज्य
 पुरुष) कटक (सेना) और रत्नोंके स्वजानोंकर प्रकाशमान
 देव और विद्याधरोंकर सेवनीय है चरण जिसके ऐसे चक्र-
 वर्ति राजा समान शोभता है ॥ २५ ॥ उसपर मिद्धवर वृष्ट
 के अकृत्रिम केयःलयोंमें विराजमान, जितेन्द्र भगवान् के अकृ-
 त्रिम प्रतिबिम्ब सेवन किये हुये भक्त्यपूरुषोंके दुःखोंको, शान्तको

समान शोभती थी ॥ ४१ ॥ चितवन करते ही प्राप्त
 हैं मनोहर भोग जिसकी ऐसा, वह जिशशत्रु राजा उस वा-
 युवेगाके साथ रमता हुआ शचीके साथ इन्द्र तथा रतिके
 साथ कामकी तरह समय बिताता था ॥ ४२ ॥ सो वह
 तन्वी उस विद्याधरोंके राजा द्वारा सेवन की हुई, प्रशंसनी-
 य है वेग जिसका, महा उदयरूप, शोकको दूर करनेवाले,
 नीतिकी तरह प्रार्थना करने योग्य मनोवेग नाथा पुत्रको ज-
 नती हुई ॥ ४३ ॥ सो अपने कलाके समूहसे चन्द्रपाकी
 तरह नष्ट किया है द्रव्यकार जिसने ऐसा, निर्मल चरित्र-
 वाला वह कुमार दिनोदिन अपने निर्मल गुणप्रमूहके साथ
 साथ बढता हुआ । ४४ ॥ जैसे लक्ष्मीका (रत्नोंका)
 प्र. म्पिर गंगा, समुद्र अपनी लहरोंमें नदियोंको प्रदण
 करता है । जैसे यह कुमार ने अपनी निर्मल बुद्धिसे राजा-
 योकी चार प्रकारकी विद्याये प्रदण करना हुआ ॥ ४५ ॥
 पर परानुभाव कुमार वाक्यावस्थामें ही हर्नान्त महागलोंके
 वरणकालोका भोग, जिनेन्द्र भगवानके वाक्यामृतके शान
 में पुष्टि पर्वचन जैनधर्मका अनुगामी, पूजनीय बुद्धिवा
 धारक था ४६ । अनन्त है सुख जिसमें ऐसी
 परमपूज्य निद्रा वृक्षा जंग्र ही बल करनेमें सवये, भव-
 रूपा दावानलकी जलके समान ऐसे धारिक ६ मयस्वरूपी
 रत्नको वह कबार वारण करता हुआ ॥ ४७ ॥ हम सुच-
 तुर मनोवेगका मनवाञ्छित कार्यकी निद्रि करनेवाला वि-

बड़ा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर क्या देखा कि उस
 सरस्वती की जड़ की एक स्वेत और काला दो भूसे निरन्तर
 काट रहे हैं, जैसे शुक्लपत्र और कृष्णपत्र मनुष्यों आ-
 युक्तों काटते हैं ॥ १० ॥ इसके सिवाय उस कृष्ण चार कपा-
 यकी समान बहुत लम्बे २ जति भयानक चलते फिरते
 चारों दिशाओं में चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उसी समय उस
 हाथीने क्रोधित होकर संयमकी असंयमकी तरह कृष्ण तट-
 पर रुड़े हुये उसको पकड़कर जोगते हिलाया ॥ १२ ॥ सो
 उसके हिलनेसे उसपर जो मधुनक्तियों का छत्ता था उसनेसे
 समस्त पक्षियों निकल कर दुःसह वेदनाओं के समान उस
 पथिक पर गीर्ण हो चित्त गई ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों
 तरफ घूम-भेदा पाँहा देनेवाली उन मधु पक्षियोंसे घिरा
 हुआ अनिश्चय दुःखित हो उग्रिकों देखने लगा ॥ १४ ॥
 सो उसकी तरफ मुँह की उठाकर देखने ही उनके होठों पर
 बहुत हँसी पक मधुका चिन्दु आ गया ॥ १५ ॥ सो वह
 मुँह उभर कर बाधा ले भी अधिक बाधा के कूल भी दुःख
 न समझ उस मधुविन्दु के स्वाद को लेता हुआ अपने को महा
 सुखा मानने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अथवा पथिक
 उस समस्त दुःखों को भूलकर उस मधुविन्दु के स्वाद में ही
 आशक्त हो ॥ फिर मधुविन्दु के रहने की अभिलाषा करना
 हुआ लज्जता रहा ॥ १७ ॥ सो हे भाई ! उस समय पथि-
 क के जिना सुख दुःख के जना ही सुख दुःख पकड़ता

■

1

1

बड़ा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर वया देखा कि उस
 सरस्वतीकी जड़की एक स्वेत और काला दो मूसे निरन्तर
 काट रहे हैं, जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मनुष्यकी आ-
 युको काटते हैं ॥ १० ॥ इसके सिवाय उस कूपमें चार कपा-
 यकी समान बहुत लम्बे २ अति भयानक चलते फिरते
 चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उसी समय उस
 हार्थाने क्रोधित होकर संयमकी असंयमकी तरह कूपके तट-
 पर खड़े दृये वृक्षको पकड़कर जोरसे हिलाया ॥ १२ ॥ तो
 उसके हिलनेसे उसपर जो मधुमक्खियोंका छत्ता था उसमेंसे
 समस्त मक्खियाँ निकल कर दुःसह वेदनाओंके समान उस
 पथिकक शरीरपर चिपट गई ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों
 तरफ धर्मभेदा पाँडा देनेवाली उन मधु मक्खियोंसे घिरा
 हुआ अनिश्चय दुःखित हो उभरको देखने लगा ॥ १४ ॥
 सो वृक्षकी तरफ मुखको उठाकर देखते ही उनके होठों पर
 बहुत छोटा एक मधुका बिन्दु आ पड़ा ॥ १५ ॥ सो वह
 मूर्ख उस मधुका बाधामें भी अधिक बाधाको कृच्छ्र भी दुःख
 न मनुष्य उस मधुबिन्दुके स्वादको लेना हुआ अपनेको महा
 सुखी मानने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अथवा पथिक
 उस समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुकणके स्वादमें ही
 गाशक्त हो फिर मधुबिन्दुके पड़नेकी अभिलाषा करना
 हुआ लटकना रहा ॥ १७ ॥ सो हे भाई ! उस समय पथि-
 कके जितना मुख दुःख है उनना ही मुख दुःख पड़ाकष्टों

का फल जानकर घुड़िमान पुरुष धर्मको सर्वथा त्या-
 ग कर सदैव धर्मावरण ही करते रहते हैं और ॥ ४१ ॥ नीच
 ते जो कुछ कर्म करते हैं सो एक इसी जन्मके लिये
 करते हैं, जिससे वे लाखों भवोंमें अनेक प्रकारके दुःख पाते
 ॥ ४४ ॥ अमल दुःखोंको घटानेवाले विषयरूपी मदिरा-
 मोहित हुये कुटिलजन आजकलके दो दिन मात्रके जी-
 वमें भी पापकार्योंको करते हैं ॥ ४५ ॥ इस लक्ष्मणपुर
 सारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो मुखदायक, साय
 नेवाला, पवित्र स्वार्थीन और अविनश्य हो ॥ ४६ ॥
 क्योंकि नरुग अवस्था है जो तो जर जर प्रमित है, आयु है
 जो मृत्युपर और सम्पदा है जो विपदापर प्रमित है, निरु-
 द्ध है जो एक मात्र पुरुषोंकी लुप्ता ही है ॥ ४७ ॥ यह
 लक्षण चाहे परवतपर चढ़े, चाहे पानालमें पड़ जावे, चाहे
 धिक्का पात्रमें भ्रमण करने रहें अन्त काल मृत्यु । तो
 हटा ना नहीं छोड़ना ॥ ४८ ॥ आते हुए वाटरूपी मदा-
 यक्ष हस्तोंका शिकनेके लिये मज्जन, माता, पिता, भ्रातरा,
 सहन, भाई पुत्र बगैरह कोई भी मर्य नहीं है ॥ ४९ ॥
 फालरूपी राक्षसकर भक्षण करने हय जावकी रक्षा करने
 ही हस्तों गोहा, गय, पयादा, इनकर अतिपूछ चार प्रका
 रकी सेन भी समर्थ नहीं है ॥ ५० ॥ कुम्भि हवा यमरूपी
 सप, दान, पूजा, मिताहार, व उनादर तप पत्र मन्त्र और
 समापनो करके ना निवारण करना असमर्थ है ॥ ५१ ॥

वचन बोलनेवालोंके, अदत्त ग्रहण न करनेवालोंके, रास-
सीकी तरह स्त्रीका त्याग करनेवालोंके ॥ ७७ ॥ परिग्रह
तजनेवाले धीर वीरोंके, संतोषामृत पानेवालोंके, वात्सल्य
धर्मसे प्रीति के धारण करनेवालोंके और विनयी पुरुषोंके
ही पवित्र धर्म होता है ॥ ७८ ॥ जो कोई जिनैन्द्रभगवानकर
भाषित धर्मको चित्तसे भावना करता है सो महा दुःखदायक
संसाररूपी दावानलको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥ ७९ ॥

योगिराजके इस प्रकार धर्मोपदेशामृतसे समस्त सभा
ऐसी ठस हो गई कि जैसे मेढके जलसे तप्तायमान पृथिवी
शीतल हो जाती है ॥ ८० ॥ अवधिज्ञान है नेत्र जिनके,
वात्सल्य वाचमें कुशल, ऐसे वे योगिराजधर्मो देश दे चुके
तब मन्त्रवेगको जितशत्रुका पुत्र जान कर निम्नलि-
खित भवान्ने कुशल सन्नाचर पूछो हुये, क्योंकि ध-
र्मान्ने पुरुषाना को नश्य पुरुषोंके लिये पक्षपात होता है
॥ ८१ ॥ हे भद्र ! तुम्हारा भक्तानि, परिवारभटित
धर्मकार्योन्मत्तपर कुशलसे ता है . . . इन प्रश्नको सुन
कर विद्याधरका पुत्र मन्त्रवेग प्र ज्वलित हो कर इस प्रकार
बहता हुआ ॥ ८२ ॥ कि हे भगवन ! निमकी रक्षा मदा
का ॥ जाके चरणारविन्द करते है, उस विद्याधरति नि-
तशत्रुके विमप्रकार विघ्न हो सके है ? क्योंकि निमकी रक्षा
साक्षात् गरुडराज करते है, उमको किसी कालमें भी सर्पका
पीटा नहि हो सकी ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहके मस्तकपर

देखा ॥ ६ ॥ तब घबराकर तेरे पिता पितामहको जाकर
 पूछा, सो ठीकही है. इष्ट संयोगकी बांछा करनेवाला क्या
 नहि करता ? सब कुछ करना है ॥ ७ ॥ जब इस प्रकार
 सर्वत्र पृच्छने पर भी तेरा पता न लगा तब देवयोगसे इधर
 आते हुये तुम्हें देखा ॥ ८ ॥ हे मित्र ! जैसे संयमी संतो-
 पको छोड़कर स्वेच्छाचारी हो इधर उधर भटकता है, वैसे
 तुम्हें आनन्द उपजानेमें समर्थ, तथा तेरे वियोग सहनेको
 असमर्थ ऐसे मुझ मित्रको छोड़कर तू किस प्रकार फिरता
 है ? ॥ ९ ॥ हे मित्र ! पवन और अग्निकी समान अपने
 दोनोंके विद्यमान रहना है. इसलिये यह मित्रता केवल
 दिव्य है. क्योंकि ॥ १० ॥ जिनके देह और आ-
 त्माकरी शरीर जन्ममरणपर्यन्त विभक्त नहीं होय,
 उनकी मित्रता सर्वोत्तम है ॥ ११ ॥ एक तो उष्ण और
 एक तो शीत ऐसे मृदु और चन्द्रमय की प्रति कभी ? जो
 मीनित एकद्वार मिल जाय ॥ १२ ॥ बुद्धिमानकी ऐसा
 मित्र व समस्त कालमें ही रहना चाहिये जो मित्रमका
 तरह किसी कलमें भी परधीन न होय ॥ १३ ॥ उन्हींकी
 मित्रता प्रशंसनीय है कि जो दिन और रातकी मन्त्रानाम
 गन्तव्य अवस्थामित्रा भक्तभावगदित पत्र रहते हैं ॥ १४ ॥
 जो मित्रके ज्ञान होने पर क्षीण होना है और बुद्धि होनेपर
 वृद्धिरूप होता है उसको अच्छा मित्र कहते हैं और वे ही
 प्रशंसनीय हैं. जैसे समुद्रके साथ चन्द्रमाकी मित्रता है. ॥

अपने घरको चले गये. कैसे हैं कि न काशमान है शोभा जिस-
की सो मानो उत्साह और नय दोनो एक ही रूा हो रहे हैं ॥
अपने घर पहुंच कर स्नेहसे बसोभूत है चित्त जिसका ऐसे वे
दोनों मित्र मिलकर साथ २ बीमे बैठे और सोये क्योंकि
स्नेहो पुरुष एक क्षण भी वियोग नहीं सह सके ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी इच्छानुसार गगन करने-
वाले विमान पर चढ़के वे दोनों मित्र दिव्य मनोहर वस्त्रा-
भूषण पहन कर अष्टाकारके धारक देवोंके समान पटने नगर
की तरफ चल दिये ॥ ४४ ॥ सो वहांसे चल कर शीघ्र ही
अनेक प्रकार आश्चर्योंसे भरे हुये मन बांछित उम पुष्प-
चन कहिये पटने नगरको प्राप्त हुये ॥ ४५ ॥ वहां पहुंच कर
मनवाञ्छित फल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुये
पटने नगरके एक उद्यानमें (वगैरे) नन्दन वनमें देवोंकी
समान उत्तम हुये ॥ ४६ ॥ उन बागके मरुत्त वृक्ष पु-
ष्पोंके गच्छंमपीस्तनोका नम्राभूत वनमें बैठे हुये क्षा-
मिनी मरुत्त काशी पुरुषकी तरह शोभते थे ॥ ४७ ॥ वहां उत्तर
कर मनोवेगने स्वतवेगने कहा कि यदि तुमको वास्तवमें
कौतुक देखनेकी उत्कंठ है तो जिस प्रकार मैं कहूँ, उमी
तुम्हें करने पर तुमारी इच्छा पूर्ण होगी ॥ ४८ ॥ यह म-
नोवेगका वचन सुनकर पवनवेगने कहा कि हे महाशय ! तू
किमी प्रकारकी शंका मन कर, जिस प्रकार तू कहैगा उम
प्रकार करनेकी मैं तयार हूँ ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! तेरे कहे हुये

किसी कारणसे इस प्रकार भगट हुये भ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५८ ॥ कईएक भले आदमी कहने लगे कि, अपने प-
राई चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि जो लोग पराई
चिन्तामें लगते हैं उनको सिवाय पापबन्धके कुछ भी फल
नहीं होता ॥ ५९ ॥ स्फुरायमान हैं कांति जिनकी ऐसे इन
दोनों मित्रोंको देखकर कितनीएक नगरकी स्त्रियें कामदेवके
वशीभूत हो अपने २ कार्यको छोड़कर शोभको प्राप्त हो
गई ॥ ६० ॥ कितनीयक स्त्रियें तो इस प्रकार कहती हुई
कि, जगनमें कामदेव एक है ऐसी प्रसिद्धि है परन्तु उस प्र-
सिद्धिको प्रत्यक्षतया असत्य करनेकेलिये ही मानो कामदे-
वने दो देह धारण करी हैं ॥ ६१ ॥ कोई स्त्री कहती हुई
कि, ऐसी असाधारण शोभाके धारक महा रूपवान् पुरुष
तृणकाष्ठके बेचनेवाले मैंने तो कभी नहीं देखे ॥ ६२ ॥

अन्य कोई स्त्री कामसे पीडित हो उनमें वचनालाप
करनेकी इच्छा कर अपनी सखीसे कहती हुई कि, हे सखी,
इन तृणकाष्ठके बेचनेवालोंको शीघ्र ही यहांपर ले आव ॥
ये जितने मूल्यमें तृणकाष्ठ देंगे उतनेमें ही ले लूंगी. क्यों
कि इष्ट जनोंसे वस्तुकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी गणना
नहीं की जाती ॥ ६४ ॥ इस प्रकार नगरनिवासियोंके वचन
सुनते २ सुन्दर शरीरके धारक ये दोनों मित्र सुवर्णका है
सिंहासन जिसमें ऐसी ब्रह्मशालामें (वादशालामें) पहुंच
गये और ॥ ६५ ॥ तृणकाष्ठके भारको ढालकर बड़े जोरसे

किसीमें असंभव है।" इसप्रकार कहकर भक्तिके भारसे न-
 म्नीभू हो नमस्कार करने लगे, सो ठीकही है विश्वरूप
 हो गई है बुद्धि जिनकी उनसे प्रशंसनीय कार्य कदापि नहीं
 होता ॥ ७५-७६ ॥ कोई २ इसप्रकार कहते हुये कि नि-
 श्चय करके यह पुण्ड्र कहिये इन्द्र ही है, क्यों कि जगत्को
 महानन्ददायिनी कान्ति अन्य किसीके नहीं हो सकती ७७
 कोई महाशय कहने लगे कि ये अपने तीमरे नेत्रको ग्रहण
 करके पृथिवी देखनेके लिये महादेवजी आये हैं क्यों कि
 ऐसा रूप सिवाय महादेवजीके अन्य किसीका नहीं हो सका
 ॥ ७८ ॥ अन्य कोई महाशय कहते हुये कि यह कोई महा
 उद्धत विद्याधर है सो पृथिवीको देखता हुआ अनेक प्रकार-
 की लाला (काड़ा) जगता फिरता है ॥ ७९ ॥ इसप्रकार विचार
 करते हुये भी वे सब नमस्कार पूजन किया है दशदिशाओंको
 जिसने ऐसे विश्वरूपमणिके समान उदयमनोवर्गका कुछ भी
 निगम नहीं कर सके कि यह कौन है ॥ ८० ॥ तब किसी
 एक प्रवाण ब्राह्मणने इसप्रकार कहा कि निश्चय करनेकेलिये
 इसका क्यों न पूछ लो ? क्यों कि बुद्धिमान पुरुष हाथमें
 कंकण रहने आगली दर्पण में आदर नहीं करते ॥ ८१ ॥
 यदि यह ब्रह्म करनेका आया है तो वादियोंका जीतनेमें
 आसक्त है मन जिनका ऐसे हम समस्त मानव और परमा-
 र्थके ज्ञाता इसके साथ वाद करेंगे ॥ ८२ ॥ पंडितोंकर भरे
 हुये इस नगरमें पश्यशोभामें ऐसा कौनसा दर्शन है जिस-



महा ठग इस त्रिलोकीमें कोई भी नहीं दीखता ॥ ९० ॥
 इस प्रकारके घचन सुनकर वह मनोवेग विधाधर कहने
 लगा कि, हे विप ! तू ही क्यों कोप करते हो विनाकारण
 तो सर्प भी रोष नहीं करता; फिर विद्वज्जन तो करेंगे ही
 कैसे ॥ ९१ ॥ भो द्विजपुत्र ! इस सोनेके सिंहासनको बहुत
 मनोहर देखकर कौतुकसे बैठ गया और इसका शब्द आ-
 काशमें कहाँ तक होता है ऐसा विचार कर मैंने सहज ही इस
 दुंदुभिको बजा दिया ॥ ९२ ॥ हे भट्ट ! हम तृणकाष्ठ घेचने
 वालोंके पुत्र हैं. वास्तवमें शास्त्रके मार्गको कुछ भी नहीं
 जानते; और 'वाद' ऐसा नाम तो मुझ निर्वुद्धिने अभी तेरे
 मुखसे ही जाना है ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण, तुमारे भारतादि
 ग्रंथोंमें क्या मुझ सरीखे बहुतसे पुरुष नहीं हैं ? जगतमें लोग
 केवलमात्र परके दूषण ही देखते हैं. अपने दूषण कोई नहीं
 देखता ॥ ९४ ॥ यदि इस सिंहासनपर मेरे बैठनेसे तुमारे
 चित्तमें हानि है तो उतर जाऊंगा. इसप्रकार कह कर वह
 अप्रमाण ज्ञानका धारक मनोवेग आसनसे उतर कर नीचे
 बैठ गया. ॥ ९५ ॥

इति श्रीआचार्य अमितगतिकृत धर्मपरीक्षा संस्कृत
 ग्रन्थका बालावबोधनी भाषाटीकामें तीसरा
 परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ३ ॥

देशमें गया तो वहाँपर उसने विमान की हुई चनोंकी बड़ी
 बड़ी अनेक राशियाँ देखीं ॥ १० ॥ उनको देखकर वह
 मूढ़ विस्मित विचरते "अहो मैंने बड़ा आश्चर्य देखा,
 मैंने बड़ा आश्चर्य देखा " इस प्रकार कहने लगा. तब-११
 वहाँके आनन्दविने पूछा कि, तुने क्या आश्चर्य देखा ? तब
 उस मूढ़ने निम्न तिलिख प्रकार कहा तो ठीक ही है मूर्ख
 लोग आली हुई आसनोंको चाँदि जानते ॥ १२ ॥ वह बोला
 जैसी इस देशमें चनोंकी राशियाँ (ढेर) हैं, इसी प्रकार
 हमारे देशमें निचोंकी राशियाँ हैं ॥ १३ ॥ यह सुनकर
 क्षुब्ध हो आनन्दविने कहा कि, क्या तू आनन्दोपगत भ्रमि
 है ? जो ऐसा असत्य भाषण करता है ? ॥ १४ ॥ हे दुष्ट-
 दुष्ट, चनोंकी राशियोंके बराबर निचोंकी राशियाँ हमने
 किसी भी देशमें कभी नहीं देखी ॥ १५ ॥ " निश्चयक-
 रके इस चलावाले देशमें निचोंके अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं अतएव
 कम हैं तो क्या नरें इन चनोंकी गिनती निचोंके बराबर
 भी नहीं है । यह दुष्ट जानदूतर इन लोगोंकी हँसी करता है"
 इस प्रकार मूर्खपणके भ्रमसे उसने कहा इनको शीघ्र ही दंड
 दिया जावे ॥ १६-१७ ॥ तब आनन्दविने वचन सुनकर उनके
 दुष्टुन्नी जन (नौकर चाकर) उस मूर्खको बाँधते हुए सो उ-
 चित ही हैं. अश्रद्धेय वचनोंका बोझनेवाला क्यों नहीं बँधना ?
 ॥ १८ ॥ तब किसी दयावान सेवकने कहा कि, हे मूर्ख इसको इस
 अन्तराष्ट्रके अनुसार ही दंड देना चाहिये ॥ १९ ॥ तब

जगत्को किस प्रकार उगते ? ॥ २८ ॥ इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिए कि प्रतीति योग्य वचन कहै । अन्यथा जो महती पीडा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहीं सक्ता ॥ २९ ॥ पुरुष सत्य भी कहै तो मूर्ख लोग नहीं मानते, इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको चाहिए कि मूर्खोंमें कदापि न बोलै, क्योंकि, ॥ ३० ॥ लोग तो अनुभवमें धाई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध वार्त्ताको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ॥ ३१ ॥ सो यहांपर निर्विचारोंके पथ्य बोलते मुझे भी बड़ी दोष प्राप्त होता है. इसकारण प्रगटतया मैं कुछ भी नहीं कह सक्ता क्योंकि, ॥ ३२ ॥ जो कोई पूर्वापरका विचार करै उसके आगे तो बोले, नहीं तो अन्यके आगे बुद्धिमानका बोलना योग्य नहीं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कह कर चुगरहनेके बाद एक द्विजामणीने कहा कि हे भद्र ! ऐसा मत कहो; हमारेमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ॥ ३४ ॥ ऐसा हरगिज मत समझ कि, अविचारी पुरुषोंका सा कार्य इन विचारवान् विद्वानोंसे होगा, क्योंकि मनुष्योंमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥ ३५ ॥ आभीरदेश वालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ, क्योंकि, कर्वोंकी समान हंस नहीं होते हैं ॥ ३६ ॥ हे भद्र, तू किसी प्रकार का भय मत कर; यहां सपस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य व्योग्यके विचार करनेवाले विद्वान हैं. तेरा इच्छा हो सो

जगत्को किस प्रकार ढगते ? ॥ २८ ॥ इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिए कि प्रतीति योग्य वचन कहै । अन्यथा जो मदती पीडा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहीं सक्ता ॥ २९ ॥ पुरुष सत्य भी कहै तो मूर्ख लोग नहीं मानते, इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको चाहिए कि मूर्खोंमें कदापि न बोलै, क्योंकि, ॥ ३० ॥ लोग तो अनुभवमें धाई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध बातोंको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ॥ ३१ ॥ सो यहांपर निर्विचानके पक्ष बोलने मुझे भी बड़ा दोष प्राप्त होता है, इसका गुण प्रगटनमें मैं कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि, ॥ ३२ ॥ जो कोई पुराणका विचार करे उसके श्रमों को बोले, नहीं तो अन्यके श्रमों बुद्धिगनका बोलना योग्य नहीं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कह कर चारहनेके बाद एक द्विजाग्रणीने कहा कि हे मद्र ! ऐसा मत करो, इसमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ॥ ३४ ॥ ऐसा दर्शित मत समझ कि, अविचारी पुरुषोंकामा काय इन विचारवान विद्वानोंमें होगा, क्योंकि मनुष्यमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥ ३५ ॥ आनीर्गदेश वालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ क्योंकि, कत्तोंकी समान हम नहीं होते हैं ॥ ३६ ॥ हे मद्र ! तु किमी प्रकार का भय मत कर, यहां समस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य व्योग्यके विचार करनेवाले विद्वान हैं, तेरा इच्छा हो मा

१. एवम् अत्रैव च ।

[illegible]

जलवा हुई अग्नि तो मैं सुखसे सह सकती हूँ परन्तु समस्त
 शरीरको ज्वालाप करनेवाले आपके वियोगको नहीं सह
 सकती ॥ ६५ ॥ हे विभो ! आपके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर
 मर जाना श्रेष्ठ है परन्तु आपके पीछे विरहरूपी शत्रुसे मारी
 जाऊँ सो भली नहीं ॥ ६६ ॥ हे नाथ, जैसे वनमें शरण र-
 हित मृगका मिह मारता है, उसी प्रकार आपके बिना यहाँ
 झकेलावा मुझे कामदेव मार डालेगा ॥ ६७ ॥ यदि आ-
 पको जान ही हो तो जावो, मेरा जीवन यमराजके घर
 जाने का आपका मार्ग कल्याण रूप होवो ॥ ६८ ॥ इस
 प्रकार अपना प्रियार्थक वचन सुनकर वह ग्रामकूट कहने ल-
 गा कि हे भगलोचना ! ऐसा मन कर स्थिर होकर घरपर
 रह चरन्तरी डकड़ मन कर राजा बड़ा व्यभिचारी (पर
 काल तुम्हें ही तुम्हें देखने ही ग्रहण करलेगा उसकारण
 हे काम ! तुझे पर मरकर ही मैं जाऊँगा ॥ ७० ॥ राजाका
 स्वयं वचन कि तुम्हसंग वा मनाहर स्त्रीको देखकर वह अ-
 वश्य लज्जा के साथ उचित ही है कि जिसकी महान् दु-
 म्हा न हो जाने स्त्रीरत्नको जान ला ॥ ७१ ॥ इस प-
 कार अपना प्रियार्थक समझा कर और यतयान्यसे भरेहुये
 वस्त्रों से ढाँपकर वह ग्रामकूट प्रति मेनारो भाग चला गया
 ॥ ७२ ॥ भगवाँ का ऐसा ही स्वभाव होता है कि वह मन
 वा छन वस्तुका प्रकार फिर किसीका भा विश्वास नहीं क-
 रता, यदि उस वस्तुका विद्याग हो जाय तो पण नक का

इच्छा करता है ॥७३॥ कुचा कुपीको पाकर उसे जगतमें समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो भी अपनी कुत्तीके छिनजानेके मगसे इन्द्रको भी भुमता है ॥ ७४ ॥ नीच कुचा कमिजाल और मलसे लिप नीरस मांसको पाकर अमृतको भी दुःस्वादु मानता है ॥ ७५ ॥ जो जिस वस्तुमें रत (पन्न) होता है वह उसकी रक्षा करता ही है जिसे कौवा विष्टाको मगद करके क्या सर्व प्रकारसे रक्षा नहीं करता ? ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार कुचा पशुके हाडको नष्ट करनेकी समान मत्स्य कर करता है उसी प्रकार जो एक पक्षी होता है वह अमृतपानी को मृदा मानता है ॥ अतः जो साधारण चले जानेके पदार्थ पर कुचा मानकर पन्न करता है सो मानने वाले के (पन्न) मान निमित्त समस्त पन्न करने वाले जो पन्न मानते वे सभी अन्धकार में हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु दुर्लभ पन्नार्थ जिसने पयी रह ही है सो मानने वाले मानेक पन्न करने मानने सब पन्न दक इत उगी ॥ ७८ ॥ जो एक दो कर जिस हान्यम गठन करने कर ७९ ॥ लोभी देह भी सुखाने कर देता है ८० ॥ लोभी घटने ८१ ॥ किन्तु केवल कौतुभा कह है ? ८२ ॥ या समस्त ने ८३ ॥ इति नव ८४ ॥ अपने दागको समस्त सब दानन दह्य पा ८५ ॥ काटिया पासे दह्य भी नहि छेदा ८६ ॥

लपने पावो पनबान्य बाप बल्लन रतिन मृतोर्ध्व दगडी कर
 दिया ॥ ८२ ॥ शिम प्रकाश सिद्धी मे कासाई कांरीके
 साध जहां नहां पतुर्गने करमी शिखरी है उती प्रकाश कर
 हुंमी काप पतिन हो धरने योंके साध सर्वसाधामे नि-
 गेव दिखाने ली ॥ ८३ ॥ शिम प्रकाश मन्त्रन देन लोह-
 फर भवभीन जोर सांरीके मन्त्रदेवीको छोड़कर भाग जाने हैं,
 लमी प्रकाश उम हुंमीके पतिन कासा मुनशर हमरे पागेने
 रहा लहा मन्त्रन धन हरगुणके उने छोड़ दिया ॥ ८४ ॥
 लर वह भी मने पतुर्गना आगमन जानकर चलन पतिन-
 नका पेप धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो मने परने सिद्धी
 हुई, लो लोति ही है क्यों कि पति आदिकसे पीछा देना
 लो निनेंका स्वाभाविक धर्म है ॥ ८५ ॥ हुंमीने इमप्रकार
 मन्त्रन पेप बनाया कि शिममे कोई भी पान नहि मरहे कि
 यह हुंमी (व्यधिकर्मिणी) है, लो पर ली इन्द्रको भी
 पोसा देकर मन्त्रनी कर देनी हैं लो पतुर्गनेकी लो गमना
 ही क्या ? ॥ ८६ ॥ साधलिये हैं गतिरके मन्त्रन कार्य
 निमने पेना वह बल्लनपक मन्त्रन प्रिभाके (हुंमीके)
 पान एर आदमीको नेजकर आर आरसे बाहर पर हस
 नले विधान करने लगा ॥ ८७ ॥ उसने हुंमीके पान जा-
 कर नमस्कार पूर्वक कहा कि, हे हुंमी ! तुमका प्रियतमि
 आगया है, लो उमके लिये शीघ्रता करनेक प्रकारके भासन
 बनाओ, मुझे यह बात करनेके लिये ही उन्हांने पेना है
 ॥ ८८ ॥ यह सुनकर उस कुटिहा मुन्शाने कहा कि, तु

अपने घरको धनधान्य वस्त्र वर्त्तन रहित मूर्खोंकी वसती कर
 दिया ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार रितुवती गौ कागाल सांडोके
 साथ जहां तहां पशुर्ग करती विचरती है उसी प्रकार यह
 कुरंगी काम पंडित हो अपने पारोंके साथ सर्वप्रकारसे निः-
 शंक विचरने ली ॥ ८३ ॥ जिस प्रकार समस्त घेर तोट-
 कर भगभीत घोर मार्गकी गडवेरीको तोटकर भाग जाते हैं,
 उसी प्रकार उस कुरंगीके पतिका अपना सुनकर उसके पारोंने
 रहा सदा समस्त धन हरणकारके उसे छोड़ दिया ॥ ८४ ॥
 तब यह भी अपने पतिका आगम जानकर पचम पतिव्र-
 ताका पेग धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो अपने घरमें तिष्ठती
 हुई. सो नीति ही है क्यों कि पति आदिककी धोका देना
 तो स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है ॥ ८५ ॥ कुरंगीने इसप्रकार
 करना पेग बनाया कि जिससे कोई भी यह नदि समझे कि
 यह कुलटा (वृषभिवारिणी) है. सो यह स्त्री इन्द्रको भी
 धोका देकर भ्रष्टानी कर देती है सो मनुष्योंकी तो गणना
 ही क्या ? ॥ ८६ ॥ साधलिये हैं वालिकके समस्त कार्य
 जिसने ऐसा यह बहुधान्यक अपनी प्रियाके (कुरंगीके)
 पास एक आदमीको भेजकर आप ग्रामसे बाहर एक वृक्ष
 सले विधाय करने लगा ॥ ८७ ॥ उसने कुरंगीके पास जा-
 कर नमस्कार पूर्वक कहा कि, हे कुरंगी ! तुमारा प्रियपति
 आगया है, सो उसके लिये शीघ्र ही अनेक प्रकारके भोजन
 बनाओ. मुझे यह बात कहनेके लिये ही उन्हीने भेजा है
 ॥ ८८ ॥ यह सुनकर उस कुटिला मुखाने कहा कि, तु

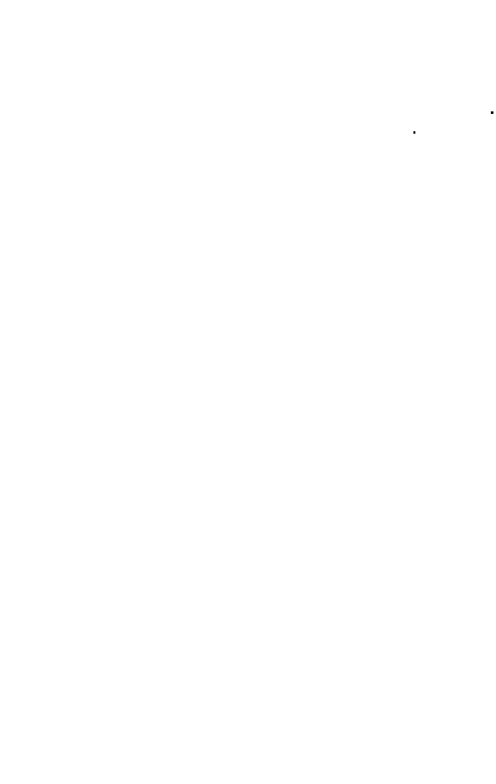
इच्छा करता है ॥७३॥ कुचा कुचीको पाकर उसे जगमें
समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो
भी अपनी कुचीके छिनजानेके मयसे इन्द्रको भी भुगता है
॥ ७४ ॥ नीच कुचा कृमिजाळ और मलसे लित नीरस
मांसको पाकर अमृतको भी दुःस्वादु मानता है ॥ ७५ ॥
जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) होता है वह उसकी रक्षा
करता ही है जैसे कौवा बिष्टाको संभल करके क्या सर्व वं-
कारसे रक्षा नहि करता ? ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार कुचा पशुके हाडको रमापनकी समान
समझ कर चाटना है उसी प्रकार जो रक्त-मूर्ख होता है वह
अमृन्दरको भी सुन्दर मानता है ॥ अपने पत्रिको परदेख चले
जानेके पदचात वह कुरंग कापके बसीभुत हो जाने जा-
रोंके (यात्रोंके) सात निःशंक रमने लगता. कैसे हैं वे जार
मानों देखागी अन्धाय ही हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु हैं इच्छित
पनोरथ जिसने पेंसी रह हंगी अपने जागेंका अनेक वं-
कारके भोजन वस्त्र धनादक देने पगी ॥ ७८ ॥ जो रक्त
ही घर निरालमे पावन पोषण की दृष्टि अपनी देहको
भी सवार २ के देता है ॥ उसका अपने द्रव्यादिक देनेमें
कौनसा कहें ? ॥ ७९ ॥ भा उस रक्ताने नौ दश दिनमें
ही अपने पागोंको समस्त वन वीजत देकर खुा पीके पूरा
कर दिया. परमें कुछ भी नहि छूटा ॥ ८० ॥ कामरूपी वा-
णोंसे पूरित है देह जिसकी पेंसी उस कुरंगाने नष्टबुद्धि होकर

जिन स्त्रियोंने अपने पतिको वशमें कर लिया है वे कोनसा अपराध नहीं लगती ॥ १६ ॥

यह स्वभाव ही है कि दुष्ट स्त्री अपने आप दोष (अन्याय) करके अपने उस दोषको छिपानेके अभिप्रायसे पतिपर कोप किया करती है ॥ १७ ॥ कुटिल अभिप्रायवाली स्त्रियें शोच विचारकर ऐसा वचन कहती हैं कि जिससे बटे २ बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है, अथवा भ्रमरूपी चक्रमें गोना खाने लग जाती है ॥ १८ ॥ स्त्रियोंके मान होने (रूठ जाने) पर अवज्ञावस्थामें अन्यकर करनेमें नहिं आये, ऐसी स्त्रीकी स्थिरताको भले प्रकार करनेके लिये रागीजन स्त्रियोंके किये हुये क्रोध मान व अंश वगैरहको स्वभावसे ही सह लेते हैं ॥ १९ ॥ जो नीच पुरुष रक्त होता है, वह स्त्री ज्यों ज्यों तिरस्कार करती है, त्यों २ मंहुकी तरह उसके सन्मुख जाता है और ॥ २० ॥ वह विचित्र प्रभारके आश्चर्य करनेवाली स्त्री रक्तपुरुषको क्रोधित करदेती है, और फिर क्रोधयुक्त किये हुये पुरुषोंके मनको शीघ्र ही रंजायमान कर देती है ॥ २१ ॥ जिसप्रकार कर्मकार [लुहार] लोहेको बहुतसा ताप देकर उसे तोड़ भी सकता है और जोड़ भी सकता है, उसीप्रकार स्त्री भी प्रेमको तोड़ने और जोड़नेरूप दोनों कार्योंमें समर्थ होती है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार बिलाईके भयसे मूसा सिकुट कर चुप हो बैठ जाता है, उसी प्रकार वह बहुधा अन्यत्र कुरं-

गीके उपर्युक्त वचन सुनकर अबाकु (ग्रेगा) हो बैठ गया ॥
 २३ ॥ अग्नि की शिखा का आताप तो सुप्त से सड़ा जा सकता
 है, पान्तु सीधी भयकारिणी झुड़की मदिन बरू रहिषो
 काई सी नहि मर सक्ता ॥ २४ ॥ दोनों हाथ जोड़ कर
 नानादाव (प्रार्थना) की हुई भी दुष्ट कोषापदान
 पदाधिवर्ती मणिषी की तरह बरबदाती व भिल्ली सी
 रहती है ॥ २५ ॥ दुर्नियार रोग की समान पुष्पों को निम्न
 कट्ट देन वाली इस प्रकार की दुःशील (ग्योटे स्वभाव को धार-
 नेवाली) श्रिया वाकें प्रभावसे दी होती हैं ॥ २६ ॥ एसी
 अवसरमें " इ विनामी घर चलकर भोजन कीजिए " इस-
 प्रकार उसके पुत्रदाता प्रार्थनापूर्वक बुलाने पर भी वह
 मूल विनायक को समान पुत्र ही रहा नर—॥ २७ ॥
 "तुन घर गया बालक रक्ता ई अरनी विपत्त पर जाकर
 क्यों नहि जायता ?" इस प्रकार दुर्भाग्य बुदबने पर वह
 इसी वक्त "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ २८ ॥
 वही घर बन ई ॥ ॥ मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ २९ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३० ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३१ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३२ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३३ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३४ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३५ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३६ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३७ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३८ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ३९ ॥
 "तुन" व मुन्दा" ने वाप लेई वरु किया जो
 अरुन "तुन" व मुन्दा" के घर चला गया ॥ ४० ॥



यह भाषण केवलमात्र गोबर की खाकर अपनी बैठकों जा
 बैठा और अपनी विषाये शोचका कारण जाननेके लिये
 ब्राह्मणसे (ज्योतिषिष्ठे) पूछने लगा ॥ ४९ ॥ कि हे भद्र !
 मेरी स्त्री मेरे घर रह क्यों हो गई ? क्या निक्षयसे हमने
 कोई मेरा दुश्मिन् जान लिया है ? यदि तुम जानने दो
 तो कहो ॥ ५० ॥ उस ब्राह्मणने कहा कि हे भद्र ! अपनी
 स्त्रीकी बात तो रहने दो, इ से पहिले जो स्त्रियोंकी चेष्टायें
 हैं वे धोर्टामी कहना हूं मैं तु लो ॥ ५१ ॥ जगत्में ऐसा
 कोई भी दोष नहीं है जो स्त्रियोंमें न हो क्योंकि ऐसा कौन
 सा अन्धकार है जो शत्रुमें कहीं भी नहीं हो ? ॥ ५२ ॥
 समुद्रके जलका परिमाण करना तो शक्य है परन्तु समस्त
 दापोंके खानि कर श्रोकों योगोंकी गिनती कुदापि नहि
 हो सकती ॥ ५३ ॥ दुर्गके दाप देवतेमें चतुर द्विजह
 कहिये एक ही बात कदा वृद्ध कर औरकी और कहने
 वाल शत्रुका कंच मन्त्रावापमान गरिहोकी समान
 कुदापि शान नहीं होता ॥ ५४ ॥ यह स्त्री, कदा उपचार
 । चिकित्सा । करत हय भी मन्त्र वृद्धिन्व वेदनाका म
 दन जीवनका अय बनैवाली है ॥ ५५ ॥ इधर उधर म
 दकृत हय दापोंका परस्पर कर्म मिलाप नहि होता या
 हम वाग्म्य ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको एकही जगह मिलाप
 करालीकी इच्छासे ही माना यह स्त्रीरूपी सभा बनाई है ५६
 जिसप्रकार जलका खानि नहीं है उसीप्रकार दुश्मनियोंका

वस्त्री (धर) यह स्त्री है ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार बेलोंके
 उत्पन्न होनेमें पृथिवी कारण है उसी प्रकार भपवस्त्रको
 उत्पन्न करनेमें कारण स्त्री है तथा जैसी अंधकारकी खानि
 रात्रि है, उसी प्रकार दुर्नेषोंकी महा खानि स्त्री है ॥ ५८ ॥
 यह स्त्री अपने स्वार्थ साधनेमें चौराहीकी समान है, जा-
 तापकरनेको अग्नि की सदृश है, इट्टादितामें अचल छा-
 याकी समान है और संव्याकी समान रागमात्र मेवकी प-
 रनेवाली है ॥ ५९ ॥ तथा कुचीकी समान अवशिष्ट नींव
 गुमापट करनेवाली, पापकर्मसे उपजी पतिन उच्छिष्टकी
 भक्षण करनेवाली है ॥ ६० ॥ दुर्लभ वस्तुमें शीघ्र ही रं-
 जायमान हो कर अपने स्वार्थीन वस्तुको छोड़नेवाली और
 महान योग साधन करनेवाली न कभी हगती और न श-
 र्माती है तथा ॥ ६१ ॥ विजलीकी समान अग्निर वायु-
 नीकी समान मायमानेकी इच्छुक, पच्छीकी समान चाल
 और दुर्नितिकी समान दुःख देनेवाली है ॥ ६२ ॥ हे म-
 राजपा ! बहुत कहा तक कहूँ तुमारे घरमें जो यह कुम्भी है
 इसको प्रपन्नमें अपना गुरु सम्भला ॥ ६३ ॥ हे भद्र !
 सम्यक् चाग्रिही समान दुर्नेष नेत्र सम्भव बन, इस कुर्ने-
 गाने अपने यार्गहा दकर नष्ट कर दिया है ॥ ६४ ॥ जो
 स्त्री निर्भय विमल हो नेत्र बनता नष्ट करती है, वह दुरा-
 नया नेत्र जंघनका हरे वा तम्रे वान निवारण कर सका
 है ? ॥ ६५ ॥ तुम्हारे ही कुम्भीमें जानेका नथ्याव ऐसी

जाकर यह देता है यह और क्या नहीं करेगा ? अब
सब कुछ करेगा ॥७५॥ हे विभो ! इसप्रकार मैंने दृष्टि
वाले रक्तपुरुष को सूचित किया, अब द्विष्टपुरुष का विधान
कदता हूँ सो सुनो ॥ ७६ ॥

२। द्विपुरुषकी कथा.

कोटी नगरमें स्कंध और बक्र नामके दो जमींदार कि-
सान रहते थे. उनमेंसे बक्र नामका किसान बड़ा बक्रपरिना-
मी था ॥ ७७ ॥ ये दोनों किसान एक ही प्रापकी चरित्र
खानेवाले थे, इसकारण दोनोंमें परस्पर बड़ा द्वेष (वैर)
हो गया. सो ठीक ही है क्यों कि जहां दो चार मनुष्योंके
एक ही द्रव्यकी अभिलाषा होती है वहांपर अवश्य ही वैर
हो जाता है ॥ ७८ ॥ प्रकाश चाहनेवाले काक और निम्न
अन्धकार चाहनेवाले उल्लूकी तरह उन दोनोंमें स्वाभाविक
दुर्निवार वैर हो गया ॥ ७९ ॥ इनमेंसे बक्र नामक किसान
सदैव लोगोंका बड़ा दुःख देता था, सो नीति ही है कि
जिसने दीप्तवृद्धिपात्र कही, वह मनुष्य जिसको मुग्धताग्रस्त
होगा ? ॥ ८० ॥ वह समय बक्र राजद्रोह व्याधि (अ-
मात्यगण) से उत्पन्न हो गया था नीति ही है जो वा-
चस्पतिक इन्द्रियों के द्वारा बक्र को यह बात पतनी हुई थी कि
यदि मैं अपने राज्य में बक्र को हरा दूं तो मेरे राज्य में
बक्र नामक व्यक्ति की शक्ति समाप्त होगी और मैं अपने
राज्य में शांति प्राप्त कर सकूंगा ॥ ८१ ॥

सुखकी प्राप्ति हो ॥ ८२ ॥ परलोकमें एकपात्र सैकड़ों सुख-
दुःखका कर्ता अपना किया हुआ पुण्यपापरूप कर्म ही साथ
जाता है। पुत्र कलत्र धन्यधान्यादिमेंसे कोई भी साथ नहीं
जाता ॥ ८३ ॥ हे तूत ! अन्त रहित घड़े लंबे मार्गवाले
इस संसाररूपी धनमें सिवाय आत्माके अपना व पराया कोई
भी नहीं है इसकारण कुबुद्धि हो छोड़कर कोई हितकारी
कार्य करें ॥ ८४ ॥ मेरी समझमें तो आप मित्रपुत्रादिकसे
मोह छोड़कर ब्राह्मण और साधु जनोके अर्थ धनादिकका
दान दें और किसी इष्टदेवका स्तुति करें जिससे आपको
सुखदायक गतिकी प्राप्ति हो ॥ ८५ ॥

ये वचन सुनकर धक्रमे कहा कि, हे पुत्र ! मेरा एक हित
रूप कार्य जो मैं कहता हूँ करे, क्योंकि जो सुपुत्र (सपूत)
होता है वह पिताके पूज्यवाक्यका उल्लंघन कदापि नहीं करता ॥
हे धन्य ! मेरे जीते जी तो यह स्कन्ध कदापि सुखी नहीं
हो सका। परन्तु हे पुत्र कुदृश्य सम्पत्ति सहित उमका वि-
नाश नहीं कर सका। सो हे पुत्र ! यह निमनकार समूल स-
कुदृश्य नष्ट हो जाय ऐसा कोई उपाय करना, जिससे कि मैं
मनास शरीरको धारण कर प्रमत्तचित्तसे सदैवके लिये स्व-
र्गवास कर सकूँ ॥ ८७-८८ ॥ मेरी समझमें इसके लिये
यह उपाय रचना कि मेरे मरजाने पर मेरी लाशको स्क-
न्धके खेतमें लजाकर लकड़ियोंके सहारे खुदा कर देना
तत्पश्चात् अपनी समस्त गौ भेस बाँहोंका उसके खेतमें छो-

ददेना, जो ये उसके सेतका समस्त धान्य नष्ट कर दे-
 और तु किसी वृक्ष या घासकी ओटमें छिपकर देखते जाना
 जब स्कन्ध कुद्व होकर मेरे पर घात (वार) करे तो उसी वृक्ष
 अथवा लोंगोंको सुनानेके लिये बड़े जोरसे बिछा बठना कि,
 स्कन्धने मेरे पिताको मार डाला ॥ ८६-९० ॥ जब तु ई-
 सबकार करेगा तो राजा, स्कन्ध द्वारा मुझको मरा जान स्क-
 न्धको कुद्व सवित दण्ड देगा सम्पत्ति छीन लेगा तो यह
 स्कन्ध पुत्रमहित परगुप्तो प्राप्त हो जायगा ॥ ९१ ॥ इस-
 कार महापापस्त्ववचन कहता २ बड़ बक पर गया और त-
 सके पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया सो नीति ही है
 कि पापकार्य करनेवालोंके महापक अनेक हो जाने हैं ॥ ९२ ॥
 जो दुष्ट मरता २ भी परको सुखी देवनेमें अधार है, उस-
 को सिवाय निर्दयी यमराजके और कोन है जो दिनकी बात
 समझा सके ? ॥ ९३ ॥ ओ व्यास ! निष्पकार बकने
 अपने पुत्रके कहे दृष्टे दिनचर्याकी कुछ भी स्वीकार नहिं
 किया. सो उम बककी सदृश जो कोई तुव लोगमें निकृष्ट
 (दुष्ट) हो तो मैं दिनरूप वचन कहने उरता हूं ॥ ९४ ॥
 जो पुरुष महा द्वेषरूपी अग्निमें दग्धहृदय है वे पराई चिन्ता
 के सिवाय न तो सुखसे ग्याने और न सोने और न पराई स-
 भ्यनिको देख सकत अथवा वे दोना ही लाकपे निर्मल सु-
 खको नहिं पावे ॥ ९५ ॥ जो नीच निरन्तर द्विष्टचित रहते
 हैं और तुच्छ अज्ञानों पराई नमस्सिकां नहिं देख सके, वे

निरन्तर जलते हुये अन्तरहित नकेरूपी अग्निकुंडमें चिरकाल तक रहना स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने द्विष्टस्वभावको नहीं छोड़ते ॥ ६६ ॥ जो मूढ़ हितवचनको छोड़कर हमेशह विपरीतिताको ही ग्रहण करता है, ऐसे दुष्टचित्तके संन्यस्त बहुमानी जन कुछ भी वचन नहीं कहते ॥ ९७ ॥

इति श्रीश्रमितागति आचार्यविरचित धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पांचमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥

भो ब्राह्मणो ! तुमने अग्निकी समान तापकारी द्विष्ट-पुरुषकी कथा तो सुनी किन्तु अब पापाण समान नष्टबुद्धि मूढ़ पुरुषकी कथा सुनो ॥ १ ॥

३ । मूढ़पुरुषकी कथा ।

यक्षदेवोंके स्थानकी समान निधानका खजाना देवालयोंसे पूरित कंटोष्ठ नामका एक नगर था ॥ २ ॥ उसमें विप्रोंकर पूजनीय वेद वेदांगका पटी अर्थात् ब्रह्माके समान चार वेद ही है मुख्य जिसका ऐसा एक भूतमति नामका ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उस धीरचित्तके वेदादि पढ़ते २ पचास वर्ष तो बालब्रह्मचर्यास्थामें ही बीत गये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् उसके वृद्धुर्षी जनोंने यक्षकी धर्म शिखाके समान उज्ज्वल नागायणके लक्ष्मीके समान यश नामकी कन्यासे विविध-वैक विवाह करा दिया ॥ ५ ॥ वह भूतमति उपाध्याय

4

5

6

7

ने कुछ भेंट देकर पुंडरीक नामक यज्ञ करानेके लिये सु-
 मंतिकों बुलाया. सो “ हे यज्ञे ! परकी रक्षा करती हु-
 तू तो पाके भीतर सोया करना और इस बटुकको पो-
 (दहलीज) में सुलाना ” इस प्रकार कहकर वह भूतना-
 द्युगको चला गया ॥ २३—२४ ॥ अपने पतिके च-
 जानेपर उस पापिष्ठाने उस ब्राह्मणके लडकेको अपना नाम
 (पार) बना लिया. सो नीतिही है कि शून्य घरमें ब-
 गिचारिणी स्त्रियोंका बड़ा राज्य हो जाना है ॥ २५ ॥
 उन दोनोंके परस्पर दर्शन स्पर्शन और बारबार गुप्त अंगों
 के प्रकाशनेसे कामेच्छा, घृतके स्पर्शसे अग्निशिक्षाके स-
 मान शीघ्र ही तीव्रतया बढ़ गई ॥ २६ ॥ बहुधा समा-
 यकारकी स्त्रियोंके द्वारा समस्त पुरुषोंका मन हरा जाता
 तो तरुण व्यभिचारिणीके द्वारा तरुण व्यभिचारीका म-
 न क्यों नहीं हरा जायेगा ? ॥ २७ ॥ इसीकारण वह बहुत
 इस यज्ञाके पीनस्तनोंसे पीड़ित होकर उसमें निरन्तर
 भोगता हुआ. सो नीति ही है कि, ऐसा काम पुरुष है, जो
 एकतामें युवति स्त्रियोंकी पावर वैराग्यका प्राप्त हो जाय ?

जो विद्वान अपना हित चाहते हैं, उनको चाहिये कि द्रव्य क्षेत्र काल मात्र युक्त अयुक्तमें तत्पर होकर सर्वथा विचारके काम किया करें ॥ ६० ॥ मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यको जो हितहितका विचार होता है, और पशुको नहीं होता. इसकारण जो पुरुष विचाररहित हैं, वे पशुके तुल्य हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार पूर्वापर विचार रहित आश्रयाती मूर्खकी होने सूचित किया. अवशोरमूर्खकी कथा यही जाती है, सो सावधान होकर सुनो ॥ ६२ ॥

७ । क्षीरमूटकी कथा.

प्रसिद्ध छोहार नामक देशमें सामुद्रिक व्यापारका माता बलयात्रा करनेमें चतुर सागरदत्त नामका एक बणिक् था ॥ ६३ ॥ मी यह बणिक् एक समय जहाजपर चढ़कर नक्र (नाके) मगर इत्यादिमें भरे हुए समुद्रमें पार छोड़कर व्यापारार्थ घौल द्वीपमें पहुँचा ॥ ६४ ॥ उम बणिक्ने घग्ने चलने समय विनेश्वर की बणीके समान सुननेमें चला दुग्ध देखा हुई एक गो भी अपने साथ ले ली थी ॥ ६५ ॥ सो उम ठरठर कर चतुर बणिक्ने भी शीतले पर ले ली कुछ मेट लेकर द्वीपक प्रति - - - - - ॥ ६६ ॥ दूसरे दिन उम बणिक्ने समान - - - - - विचारनेवाली समुद्रका मयान शिशुप व्यादिष्ट - - - - - मीर लेना कर बादशाहकी मेट करी ॥ ६७ ॥ क्योंकि उम देशमें



कैसे होगी, इसकी हृदि किस प्रकार होगी; इसप्रकार जो पुरुष प्रतिसमय नहि विचारता, वह दोनों लोकमें दुःख ही भोगता है ॥ ८४ ॥ जो नीच पुरुष गर्वित आश्रय होकर अपने मनमें सारभूत विचारको स्थान नहि देता, वह उक्त बादशाहकी समान मानमर्दित हो, अपने कार्यको नष्ट करता है और वह बुद्धिमानोंके द्वारा त्यागने योग्य है ॥ ८५ ॥ उस नष्टबुद्धि म्लेच्छराजाने उस गौको असह्य पीटा दी, तो ठीक ही है। मुखकी संगति करनेवाला भगवत्प्राप्ति निवार्य समस्त दोषोंको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ इस संसारमें सर्वनाथ समान तो कोई अंधकार नहि है और ज्ञानके समान कोई प्रकाश नहि है। इसीप्रकार जन्ममरणके समान कोई शत्रु नहीं और मांसके समान कोई मित्र (बंधु) नहि है ॥ ८७ ॥ कटार्चित्त सुख रहते अन्धकार हो जाय अथवा सुख शांतता स्त्री चन्द्रमामें लब्धा हो जाय परन्तु मुख्य ब्रह्मावि बिंदु रहित नहि पायी ॥ ८८ ॥ सि-
हाई विरजन्तीन परिपूर्ण वस्त्र पहना, मगराजका सेवा करना तथा वैद्यान्तमें जर जाता यह है, परन्तु मुख्य अनुरोध की पूर्णता का महाजन प्राप्य नहीं है ॥ ८९ ॥ जिन्होंने अन्यथा धर्म ग्रन्थ बना दिये हैं वे जानते हैं कि ये सब बातें हीन हए हैं, इत्यादि प्रकार के भ्रमों से मुक्ति पाने की रास्ता हीन ही है ॥ ९० ॥

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

वह दुःसाध्य आताप इन्धनसे अग्निकी समान उत्तरोत्तर ब-
 ढने लगा ॥ ५३ ॥ अष्टमकारकी चिकित्सा जानते हुए
 भी वे वैद्य दुर्जनकी साधनामें सज्जनोंकी समान उस ताप-
 को शमन करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ५४ ॥ जब मन्त्रीने
 देखा कि राजाके शरीरमें ताप बढ़ता ही जाता है, तो उ-
 सने मथुरा नगरमें चारों तरफ घोषणा करी (दिंडोरा
 पीटा) कि जो कोई राजाके शरीरका दाह नष्ट कर देगा,
 उसको मान प्रतिष्ठाके साथ १०० गांव दिये जायेंगे ॥ ५५
 —५६ ॥ इसके सिवाय खास राजाके पहिरनेका उत्कृष्ट
 कंठा, अत्यंत दुलभ कटिमेखला और एक पोपाकका जोड़ा
 भी दिया जायगा ॥ ५७ ॥ यह घोषणा सुनकर एक व-
 णिक गोशीर्ष चन्दनकी लकड़ी लेनेके लिये घरसे बाहर
 हुवा. सो दैवयोगसे एक धोबीके हाथमें गोसीर चंदनका
 मूठा देखा ॥ ५८ ॥ उस वणिक्ने चारों तरफ उड़ते हुए
 भ्रमरके समूहसे वास्तवमें गोशीरचन्दनका समझ धोबीसे
 पूछा कि, हे भद्र ! यह नापकी लकड़ीका मूठा तु कहांसे
 लाया ? ॥ ५९ ॥ धोबीने कहा कि मुझे नदीमें बहना
 हुवा मिला है. नव वणिक्ने कहा कि, इसके बदलेमें बहुत-
 सा काष्ठ लेकर यह हमको दे दो ॥ ६० ॥ उस निर्विवे-
 की धोबीने कहा कि हे माधु पुरुष ! ले लो. इसमें मेरी क्या
 हानि है ? इसप्रकार कहकर उस चन्दनके मूठके बदलेमें
 बहुतसा काष्ठ समूह लेकर वह मूठा दे दिया ॥ ६१ ॥

जो अन्यकारसे ग्रंथा होता है वह नेत्रोंसे तो नहीं देखता, किन्तु चित्तसे तो तत्त्वको (वस्तुके स्वरूपको) देखता है. परन्तु जो अज्ञानकर शून्य हृदय हैं, वे न तो चित्तसे देखते और न नेत्रोंसे ही देखते हैं ॥ ७१ ॥ सो हे विप्रो ! उस घो-
र्वाका ममान बदला करनेवाला कोई मनुष्य इस वादशाला में होय तो मैं पृच्छने पर भी सच्ची बात कहते हुये डरता हूं ॥ ७२ ॥ इसप्रकार मैने चंदनत्यागा मूर्खको कहा. अब सर्व प्रकार निंदाके भाजन ४ मूर्खोंकी कथा कहता हूं सो सुनो-

१० चाग्मूत्राँकी कथा ।

[illegible]

जैसा दुःशील कुरूप नीच कुलकी स्त्रियोंके सौभाग्य रूप और सुन्दरताका गर्व होता है, वैसा सुशील सुख्य कुलीन निष्पाप धर्मात्मा स्त्रियोंके कदापि नहीं होता ॥ ३७—३८ ॥ अपने हितकी बांछा करनेवाले समझदार पुरुषोंको कुलीन भक्तिगती शांत धर्ममार्गकी जानकारी एक ही स्त्री करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंके वर्गाभूत होते हैं, वे निःसंदेह इस लोकमें तो कुलकी कीर्ति और सुखका नाश करने हैं और परलोकमें असह्य नरक वेदनाको योग्यते हैं ॥ ४० ॥ इस जगत्में बेगी व्याघ्र और सर्पोंसे निर्भय रहनेवाले नो बहुत पुरुष हैं, परंतु स्त्रियोंसे नहीं दूरनेवाला एक भी नहीं दान्यता ॥ ४० ॥ जो पुरुष कुंडलमग्निकी सदृश दुर्बुद्धि होने हैं, उनके सन्मुख पण्डित जनोंको चाहिये कि तत्त्व , दन्तुका स्वरूप) न कहें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपनी मिदनीय क्या कह कर, दूसरे मूर्खके चुर रहनेपर तृतीय मूर्खने अपनी क्या कहनी प्रारंभ की ॥ ४३ ॥

तृतीय मूर्खकी कथा—हे पुरुषानियो ! अब मैं तुमको अपनी मूर्खताका कहना है, जो आप सावधान होकर सुनें ॥ ४४ ॥ एक समय मैं समुद्रगत जाकर अपनी स्त्रीको ले आया, रात्रिको सोने समय वह सोझनी नहीं थी, सो मैंने कह कि - कुशोदरि ! इस दानोंमेंसे जो कोई पहिले सोलेंगा वही भीमें तले हुये गुदके दश पुत्र दारेगा (देगा) ॥ ४५—४६ ॥ तब मेरी स्त्रीने कहा कि, बहुत ठीक है, ऐसा

हैं पान्तु अना रित पाहनेवाले 'अमितगंतयः' करिये म-
प्रमाणज्ञानके धारक को सत्पुरुष हैं ये अपनी बुद्धिके अनुसार
अपने मनमें विचारकर पहिलेसेही हित किया करते हैं ॥

इति श्रीअमरगति भाष्यार्थविरचित चर्मसीमा संस्कृत
ग्रंथकी नालाबोधोपिनी भाषाटीकामें नवम परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥



अथानन्तर मनोयोगने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! रागसे
ग्रन्था रक्तपुरुष, द्वेषका करता द्विष्टपुरुष, विज्ञानकर रश्मि
मृदुपुरुष, ध्युद्गमाही राजाका पुत्र, विपरीतात्मा विषदूषित,
बिनापरीक्षा किये ही आश्रके वृत्तको काटनेवाला शेखर
नामका राजा, सुगन्धि गौ का व्याघ्रो तोमर वादशाह, अग-
स्त्युक्त जलानेवाला काली, नामकी लकड़ीसे चन्दनका बर्द-
का करनेवाला लोभा रजक और अचानकरदिन चार मूर्ख ये
दश प्रकारके मूर्ख कहें, इनमेंमें कई मूर्ख तुम लोगोमें ही
तो मुझे बता दो ॥ १-२-३ ॥ यह बात सुनकर ममस्त
ब्राह्मणोंने कहा कि हे भद्र ! हम सब विचारवान् हैं जिस-
प्रकारगृह सबको पारना है उसीप्रकार हम मूर्खको दण्ड
देने हैं ॥ ४ ॥ मनोयोगने फिर कहा कि, हे विप्रगण ! मेरे मनमें
अब भी थोड़ा भय है, क्योंकि आप लोगोंमें बहुधा अपने
आपको अग्रह करनेवाले होंगे ॥ ५ ॥ दूसरे जिस प्रकारके पास
सुन्दर धनोदर बैठने का आसन नहिं हो, शिर पर मोटी पगड़ी

खाने लग जाती है, उसी प्रकार रक्षा नहीं की हुई निरं-
कुश स्त्री मनसे प्रसन्न हो अपने मनचाहे इष्ट पुरुषको ग्रहण
कर लेती है. और रोकने पर प्रायः कोप किया करती है
॥८४॥ उस अग्निदेवके साथ रमण करनेके पश्चात् छाया
ने कहा कि तू यहांसे शीघ्र ही चला जा, क्योंकि मेरे पति
विरुद्धवृत्ति यमराजके ध्यानेका समय हो गया है ॥८५॥ वह
यदि तुझे मेरे साथ देखेगा तो गुस्से होकर मेरी नासिका
काट लेगा और तुझे भी जानसे मार डालेगा. क्योंकि
अपनी स्त्रीके जागृको देखकर कोई भी क्षमा नहीं करता
॥ ८६ ॥ तब उस पानस्नानमें पीठिन अंगवाली छायाको
अग्निग प्रवेश अग्निदेवने कहा कि हे प्रिये ! तुझे छोड़
कर मैं जहां जाऊंगा वहां मेरे दुष्टविषयवाता वियोगरूपा
दुष्टी मार डालेगी ॥ ८७ ॥ इस भावणात् प्रिये ! मेरे
सह दुष्ट मर जावे तब मैं जहां जाऊं वहां भी श्रेष्ठ
है, पानस्नानमें ही मैं अपने पति के मरुपी अग्निमें मेरे
विना पानस्नान करने पर मैं जहां जाऊं वहां मैं ॥ ८८ ॥ इस प्रकार
कहने पर अग्निदेवने उस स्त्री को अपने समय निगलकर
अग्निमें घेरे ॥ ८९ ॥ इस प्रकार अग्निदेवने स्त्री हृदयमें
रख ली तो इसमें कुछ भी अशुभ नहीं है ॥ ९० ॥
तत्पश्चात् यमराज, अग्निदेवने उस स्त्री को पानस्नान
हुए भी नहीं करने दूँगा तब मैं अग्निमें रखकर
चल दिया. सो उचित है ॥ ९१ ॥ विद्योक्त प्रपन्न विद्वान्ने

11/11/11

॥ २३ ॥ भिड़ीके वृक्षकी शाखा [हाइली] पर कमंडलुका
 रखा जाना और उसमें हाथीका प्रवेश करना, फिरना
 और निकलना आजतक इस तीन लोकमें क्या किसीने भी
 देखा या सुना है ? ॥ २४ ॥ हे दुर्मते ! कदाचित् अग्निमें
 जल, शिलापर कमल, गधेके सींग, सूर्यमें अन्धकार और
 प्रचलपवर्तोंमें चलपणा हो जाय परन्तु तेरे वचनकी सत्यता
 तो कदापि नहीं हो सकती ॥ २५ ॥ यह सुनकर विद्याधरने
 कहा कि—हे ब्राह्मणों ! बड़ा आश्चर्य है कि—ऐसे असत्य-
 भाषी केवल हम ही हैं ? क्या तुम रे मतमें ऐसे २ अनिवार्य
 असत्य वचन नहीं हैं ? ॥ २६ ॥ इस लोकमें प्रायः सब
 जने परके ही दोष देखते हैं अथवा अपने असत्यमतकी
 पोषणा करनेवाले ही दोषते हैं किन्तु परके गुणोंकी
 शुद्धिको विस्मय करने लगे पक्षपात करने वाले अमित ज्ञानका
 धारक कोई ब्रह्मा ही होता है ॥ २७ ॥

इति श्रीअमिनगन्धर्वविश्वचर्मनरेशो मंस्कृत प्रवृत्ती
 बालावबोधिनी भाषाटीक में ब्रह्मवाचस्पतिदेव पृष्ठे ॥१२॥

→ **the system must be**

[illegible]

॥ १३ ॥ गया देवताओं ने ही बन्दर होकर राक्षसों के
 को मारा तो यह कहना भी मनोवांछित नविको म
 होना ॥ १४ ॥ जंकरने मर्बूह होकर राक्षसों के
 क्यों दिया ? जिससे देवताओं के भी बड़ा उग्रद्वर हु
 ठे मित्र । पानी को मपन करनेसे (पिलोनेसे) पक्का
 निरुपलता उसी प्रकार अन्यमतके पुराण विचार
 पर सर्वथा सागरदित दीखते हैं ॥ १५ ॥ हे मि
 लोगोंकर कल्पना किये गये सुप्रवाटिक वानर और
 ग्यादिक गक्षम नहिं थे ॥ १७ ॥ य मय विद्या
 सम्पन्न जैनधर्ममें लवलीन पवित्र मदानाग बड़े
 मनुष्यों के राजा है. इनकी सेनामें बरगाह निरमे
 ध्वजा दानेसे चानम्बर्गी कहनेमें आता है और गवणा
 ध्वजामें गक्षमोंकी मूर्तिका चढ़ रहनेसे गक्षमवं
 जाते हैं ॥ १८—१९ ॥ जो है 'नर' चद्रपाके
 उज्ज्वलदृष्टिके आरक मन्त्र है. उग्र ॥ जिस प्रकार
 स्वामी के गौतम गद्य करने श्रीगिराजाले राज किया
 प्रकार अद्भुत करना चाहिये ॥ २० ॥ हे भद्र !
 मतके पुराणों के गपोडे जोर भा दिखतः हैं, इस
 कहकर पवनरेगसहित श्वेताम्बरका भेष गण किये
 ॥ २१ ॥ पढ़ने नगरमें उहे द्वारमें प्रवेश करके जी
 बाद सूचनाकी मेरी बजाकर मानेक विद्वामनपर बैठ
 ॥ २२ ॥ मेरीका शब्द सुनते ही ब्राह्मणोंने आकर

की. तो ठीक ही है बरकी इच्छा रखनेवाला क्या क्या
 नहीं करता ? ॥ ४७—४८—४९ ॥ तत्पश्चात् रावणने
 भीम हाथोंसे गन्धर्वदेवोंको भी मोहित करनेवाला हस्तक
 नाचा भंगीत करना प्रारंभ किया ॥ ५० ॥ महादेवने भी
 पार्वतीके मुख परसे अपने हाथोंको हटाकर रावणके मादसको
 देखकर उसको मन चाहा वर दिया ॥ ५१ ॥ तत्प-
 श्चात् गर्भ २ मूत्रमे जमीनको सिंचन करता हुई उस
 पद्मकमलाको रावणने जोहरदिन अपने कन्धोपर विपका
 लिया ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार चान्सीयिने रामा-
 यणमें लिखा है कि नहीं तो आपलोग यदि सत्यवादी
 है तो ठीक २ बरो ? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—हे माण्डू !
 यह सब सत्य है. इसप्रकार मर्मिष्ट व प्रत्यक्ष बातको
 अन्यथा कौन कह सकता है ? ॥ ५४ ॥ इत्येतदधीने
 कहा कि—जब रावणने हाथे हुए तो पद्मक. उसकी पटके
 उग गये ना मेरा एक पद्मक मेरे नहीं निपक सकता ॥ ५५ ॥
 भारका तो यह वचन मन्त्र श्रुति सेना वचन असत्य है,
 इसमें विषय जोरके प दाख्य है. आग कुल नहीं दीमता ॥
 ५६ ॥ यदि कौन कहा कि—रावणके शिर तो पदादेवोंने
 तोड़ दिया. तो कदापि नहीं हा सकता क्योंकि महादेव-
 भीमें पद्मक नाहू. इनका व न दाता ना परस्परियोंके दाता
 इत्यादि दूना श्रवण ७ ७ ७ ७ ना तोड़ लिया ? ॥ ५७ ॥
 तो ब्रह्मदेव. इत्यनेन उवाच । मूत्रमे कर्मवर्ष है, वह अन्यका

और ज्ञानके बिना कदापि नष्ट नहीं हो सकता ॥ ३७ ॥
 क्रोधमानमायालोभादि कषायोंसे उत्पन्न हुवा पाप गंगा
 स्नानादिसे धोया जाता है. ऐसे वचन मूढात्मा ही कहते
 हैं. पीमांसक (परीक्षक) विद्वान् कदापि नहीं कह सकते
 ॥ ३८ ॥ जो जल शरीरको ही शुद्ध करनेमें असमर्थ है,
 वह शरीरके भीतर रहनेवाले दुष्ट मनको किसप्रकार शुद्ध
 वा निर्मल कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ जो लोग ऐसा कहते
 हैं कि—गर्भसे मृत्युपर्यन्त यह जीव पृथिवी अप तेज वायु इन
 ४ भूतोंसे (तत्त्वोंसे) ही बना हुआ है. इन ४ तत्त्वोंके वा
 पदार्थोंके सिवाय अन्य कोई जीव पदार्थ नहीं है 'वे लोग
 अपनी आत्माको ठगते हैं ॥ ४० ॥ चित्त अर्थात् ज्ञान
 जो है सो आत्माका (जीवका) स्वभाव है. और चित्तका
 (ज्ञानका) कार्य जानना वा विचार करना है. यह जानने
 वा विचारनेकी शक्ति प्रत्येक देहधारीमें प्रतिक्षण पाई
 जाती है. सो प्रतिक्षणके ज्ञानका वा विचारको पूर्व क्षणका
 ज्ञान वा विचार कारण होता है अर्थात् आदिके ज्ञानसे व
 विचारसे मध्यका ज्ञान और मध्यके ज्ञानसे अन्तका ज्ञान
 और अन्तके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है. जब
 इसप्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व २ ज्ञान कारण है तो
 उसका अभाव कदापि नहीं हो सकता. जब ज्ञानगुणका
 अभाव नहीं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात्
 जीवका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा ॥ ४१—४२ ॥ यद्यपि

कर्मोंको किसप्रकार नष्ट कर सकती है ॥ ६५ ॥ “सत्या-
 र्यगुरुनके वचनोंसे जानकर रत्नत्रयके सेवन करनेवालोंके
 ही पाप नष्ट होते हैं。” यह वचन ही सत्य जानना ॥ ६६ ॥
 हे मित्र ! कृपायके वशीभूत होकर आत्माके किये हुये
 पाप दीक्षा लेनेसे ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इस बातको
 कौन विद्वान प्रमाण कर सकता है ? ॥ ६७ ॥ यदि कृपाय-
 सहित ध्यान करनेसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति होय तो बंध्याके
 पुत्रका मोभाग्य वर्णन करनेमें भी द्रव्यकी प्राप्ति होना
 चाहिये जो असम्भव है ॥ ६८ ॥ जिन पुरुषोंके इंद्रियोंका
 जप और कृपायोंका निग्रह नहीं, ऐसे पुरुषोंका वचन धूर्तोंके
 वचनोंके समान अन्य नहीं है ॥ ६९ ॥ उद्धर्त और अधा-
 र्ताके बीच से मेरी निगाह नहीं पड़ेगी, सपथकर जो
 दुष्ट सत्य के पेटके फाटकर निकला और पांशुभक्षणमें
 लातुने-लाक भासभक्षण करनेके दोषका अभ्यास करता है,
 उस मुटुबुद्धके हृदय में सत्य का निवास हो सकता है ?
 ॥ ७० ॥ ७१ ॥ जो मुटुबुद्ध का दोष भर चुके शरीरको
 जानबुझकर द्रव्य प्राप्ति और ज्ञान के लोभसे, उस बुद्धके
 हृदय में सत्य का निवास हो सकता है ? ॥ ७२ ॥ जो बुद्ध प्रायश्चमे विन्दु
 सर्वशून्यपक्षों के लोभसे, जो ज्ञान के लोभसे, जो ज्ञान के लोभसे,
 उसके लोभसे ही सत्य का निवास हो सकता है ॥ ७३ ॥ जो सर्वशू-
 न्यताकी चरित्रना करता है, वह बुद्ध कैसा ? और उसके
 पथमें बन्धुमोक्षार्थ तपस्या की व्यवस्था हो क्या हो सकती है ?

को धार कालकूटवपका समाने अपने अमासिक पीना
 पीते हुये ॥ ५१ ॥ कितनेयक राजा तो लुधावृषासे पीडित
 हो, लज्जा छोडकर अपने अपने घरको चले गये. क्योंकि
 मनुष्य तर्भातक लज्जावान रहता है, जबतक कि-उसका
 चित्त दूषित न हो ॥ ५२ ॥ किन्ने ही राजाओंने ऐसा
 विचार किया कि-यदि हम भगवानको वनमें छोडकर
 घर जावेंगे तो भगवानके पुत्र भग्नचक्रवर्त्ती रुष्ट होकर हमारी
 वृत्ति छीन लेंगे, तब भी तो भिक्षादन करना पड़ेगा, इससे
 तो भगवानकी सेवा करने हुये इस वनमें रहना ही श्रेष्ठ
 है. इस प्रकार विचार करके वे सब राजा रुद्रमृलादि भक्षण
 करनेहुये वहीं पर रहे अपने २ घरको नहि गये ॥ ५३-५४ ॥
 तन्मन्त्रान् कच्छ महासच्छराजाने अपने पाटिन्यके गर्वसे
 फलमृलादि भक्षण करना ही तात्पर्यवर्त्तनाकर प्रचार
 किया ॥ ५५ ॥ और धर्मचिकुमान् ग्राह्यपनका प्ररूपण
 करके अपने कपिरादि शिष्योंका उद्देश किया ॥ ५६ ॥
 इसप्रकार ...यान्य राजा जोत भी अपना २ रुचि अनु
 सार नीनमें नरेवड नकाक महा मध्यान्वको बढ़ानेवाले
 पाखडनन चलाये ॥ ५७-५८ ॥ इसमें शुक्र और वृह
 स्पति नामक दो राजावान मिलकर स्वेच्छापूर्वक अपने
 द्वियोंको पोषण करते हुये चार्वाकदर्शनकी प्रवृत्ति कर

पुत्र अर्ककीर्ति हुवा और भरतके भाई बाहुबलिके सोम नामका पुत्र प्रसिद्ध हुवा. इन ही दोनोंके वंश सूर्यवंश और सोमवंश (चंद्रवंश) नामसे प्रसिद्धिमें आये ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् कालदोषसे मौढिलायन नामक पार्श्वनाथ भगवान् का शिष्य एक तपस्वी था. उसने महावीरस्वामीसे रुष्ट होकर बौद्धमतको प्रगट किया [इस श्लोकमें 'वीरनाथस्य' षष्ठ्यन्तपद होनेसे व दो पुस्तकोंमें 'मौगलायनः' पाठ होने से ऐसा भी अर्थ होता है, कि महावीरस्वामीके तपस्वी शिष्यने मौगलायनमत (मुसलमानोंका मत) प्रगट किया] ॥ ६८ ॥ उसने शुद्धोदन राजाके पुत्रको बुद्धपरमात्मा कह कर प्रगट किया है सो ठीक ही है, कोपरूपी बैरीसे पराजित होकर संसारी जीव क्या २ नहि करते ? ॥ ६९ ॥ कृष्णके मरनेपर उसका बलभद्रजी भ्रातृमोहके बशीभूत हो छै महिनेतक लिये २ फिरे—उसी दिनसे जगतमें कंकाल-नामक व्रत प्रसिद्धिमें आया ॥ ७० ॥ हे मित्र ! मिथ्या-दृष्टि पुरुषोंने जो अगण्य पाखण्डमत चलाये हैं उनका मैं कहांतक वर्णन करूं ? ॥ ७१ ॥ जो पाखंड चोथे कालमें बीजरूपसे स्थित थे, वे सब इस कलिकालरूपी (पंचम-कालरूपी) पृथिवीमें प्रगट होकर विस्तारको प्राप्त हो गये ॥ ७२ ॥ जो समस्त देवोंकर वंदनीय है और विरागताके साथ केवलज्ञानरूपी आलोकसे अवलोकन किया है तीन लोक जिसने, वही जिनेन्द्र भगवान् परमेष्ठी है (सत्यार्थ

पैँडपर प्राप्त हो सकती है, परंतु पण्डितोंकर पूजनीय निर्मल
 तत्त्वचुचिका मिलना कठिन है ॥ ९४ ॥ हे मित्र ! मूढजन
 मिथ्यात्वसे दूषित होकर दिग्विधे द्रुप मयस्त वस्तुस्वरूपको
 विपरीत देखते हैं, ऐसे में मिथ्यात्वको नष्ट करके तूने
 ही मुझे अलभ्य निर्मल सम्यक्त्व दिया ॥ ९५ ॥
 मैंने अब मिथ्यात्वरूपी विषको त्यागकर मन वचन कायसे
 जिनशामनको ग्रहण किया, सो हे महापते ! अब तेरे
 प्रसादसे मैं ब्रह्मरूप से अविनष्ट जाऊँ, ऐसा उपाय
 कर ॥ ९६ ॥ दूर हो नष्ट है मिथ्यात्व जिसका ऐसे
 अपने मित्रवा उद्युक्त ने ही निवारण मनावेग ग्रन्थन्त
 हषक नाम दृष्टा सा यत्करीतुं शक्यम् — शान्ते उपायसे
 मन स्थिर तथा मित्र के चरणों में अर्पण प्रकृत है कि—
 जिस शान्ति के लिये मैंने प्रार्थना की, वह प्रकृत उभ
 पनोरिते द्रव्य के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लियेन्द्रवचनों
 से वांछित है, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 शिवे प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 ऐसा की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 ॥ ९८ ॥ जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 उमाप्रसाद के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 कृत वेदान्त के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 पर चतुर्दश प्रसन्नता के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये
 हये ॥ ९९ ॥ सो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये प्रार्थना की, जो शान्ति के लिये

रूपों परमें रहनेवाले अनिराद्य लोकशास्त्र मोहरूप
 कायको वाक्यरूप की किरणोंसे नष्ट करनेमें सक्षम, अपरि-
 दे शानकी गति निम्नके ऐसे कैवलयज्ञानीरूपोंद्वारा -
 पूर्वक नमस्कार व स्तुति करने निमग्ननिनामा मुनिके
 गुणोंके निकट ही बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीश्रामिनगत्याचारः विगविन धर्मपरीशामेऽहूनधेयती व
वयोधिनी भाग टीकामि अठ्ठाद्वय पविच्छेद पूर्ण हृषा ॥ २

[illegible]

गुरुकी साक्षीसे सम्भवत्पूर्वक आवकके घन ग्रहण कर, क्योंकि व्यापारीके सपान साक्षी पूर्वक घन ग्रहण करनेवाला अष्टताको प्राप्त नहीं होता। इस कारण यह घन साक्षापूर्वक ही ग्रहण करने योग्य है ॥ ६—७ ॥ जिसप्रकार क्षेत्रकी क्षयारामें जड़के बिना रोपण किया हुआ धान्य फलीभूत नहीं होता, उसीप्रकार सम्भवत्के बिना घनग्रहण करना भी सफल नहीं होता ॥ ८ ॥ नीचसहित देवपंक्तिकी मदद सम्भवत्वमहित जीवोंका ही दूर्य घन निश्चल होता है ॥ ९ ॥ जिनेन्द्रगवानकर भाषित जीव अनाव आसन्न वंश संवर और माक्ष इन मनुष्योंके श्रद्धान कर्मका सन्तुष्टोंने त्योंको पापनेवाला सम्भवत् कदा है ॥ १० ॥ इस पवित्र सम्भवत्की श्रद्धा कात ॥ ११ ॥ योगसहित और संवेग करण दया और आत्मिक्याद गुणान्तर सहित धारण करनेवाले पुरुषका ही घन (वायु) फलीभूत होता है ॥ ११

आवकाचार का वर्णन ।

आवकाचारमें पांच अणुवन, तीन गुणवन, चार शिक्षावन इसप्रकार चार घन प्रयोग करने चाहिये ॥ १२ ॥

१ अहिमा २ सत्य ३ अन्नय ४ ब्रह्मचर्य और ५ असगता (अपरिमितत्व) इन पांच वनोंको एक देशधारण करना तो पांच अणुवन है ॥ १३ ॥ हे वत्स! वनको धारण करना तो सहज है परन्तु उनकी रक्षा करना कष्टसाध्य

है. जैसे बांसका काटना तो सहज है परन्तु घसना रक्षा कराना है । १४ । जिस प्रकार मनवांछित सुखको देनेवाले धनको घरमें छिपाकर रखा करते हैं, उसी प्रकार अपने चिधरूपी घरमें ग्रहण किये हुए वतरूपी रत्नको रत्नकर पत्नसे सदा रखा करना चाहिए ॥ १५ ॥ क्योंकि प्रमादसे नष्ट हो जानेवाला वस्तु फिरसे प्राप्त नहीं होता. क्या कोई समुद्रमें डाला हुआ दिव्य रत्न लादेनेको समर्थ है ? कदापि नहीं ॥ १६ ॥

वस और स्वावर्गके भेदसे जीव, दो प्रकारके हैं उनमेंसे वस्तुका इच्छा करनेवाले प्राणिकको (गृहस्थको) वस जीवोंकी रक्षा करना चाहिए, वस जीवोंकी रक्षा करनेको ही अहिमागुव्रत कहा है ॥ १७ ॥ दो इन्द्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चतुर्गुण्डियवाले आठ इन्द्रियवाले इन ४ प्रकारके वस जीवोंकी रक्षा करनेवाले प्राणिकों को वस जीवोंकी रक्षा करनेवाले पुरुषोंकी चाहिए कि वस जीवोंका कायमें उनकी रक्षा कर ॥ १८ ॥ हिमा दो प्रकारकी १ एक आरम्भी, दूसरी अनारम्भी. मा मुनि ने राजा को प्रकारका हिमाको छाहते हैं. परन्तु गृहस्थ है मा अनारम्भी हिमा का ही छाहता है १९ जो प्राणिक मोक्षको इच्छा करनेवाले व्रतणाथारक हैं. उनका चाहिए कि निरपेक्ष + पादम जीवोंकी हिमा भी नहीं करें ॥ २० ॥ बहूतमे दयाहीन देवता, अनियम, औपधि, विनय ३ मन्त्रादि पाठनेके लिए जीवोंकी हिमा करने

हैं, सो इनके अर्थ कदापि जीवहिंसा नहीं करना चाहिए ॥ किसी जीवको बांधना मारना नासिकादिका छेदन भेदन करना बहुत भार लादना भूखा प्यासा रखना इत्यादि अतीचारों सहित हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसागुणवत् स्थिर होता है ॥ २२ ॥ जिहास्वादके वशीभूत हो मांसभक्षणके लोभसे भयभीत जीवोंका प्राण हरना कदापि योग्य नहीं ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने मांसकी पुष्टिके लिये परके मांसको खाता है, उस निर्दयी हिंसकका नरकके अनन्त दुखोंसे छुटकारा नहीं होता ॥ २४ ॥ यह तो नियम ही है कि—मांसभक्षीके चित्तमें दया किसी प्रकार भी नहीं हो सकती. जब दया ही नहीं है तो उस निर्दय पुरुषमें धर्मोद्य कदासे हो ? और धर्मरहित जीव अनेक दुखोंके घर सातवें नरकको जाता है ॥ २५ ॥ जिमका चित्त प्राणियात् करते समय देखने व स्पर्श करनेका डोंडता है, वह भी नरकमें जाता है तो फिर हिंसा करनेवाला नरकमें क्यों नहीं जायगा ? ॥ २६ ॥ जो पुरुष मांसका लोलुपतासे जन्मभर हिंसा करता है, उसका नरकरूपी कृशसे निकलना मैं कदापि नहीं देखता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य मांसभक्षण करनेमें रत होता है, उसको नरकमें नारकी जांव लाहेकी शलाकाओंसे छिन्न भिन्न करके जवरदस्ती पकड़कर जाड्वल्यपान वज्राग्निमें डाल देने हैं ॥* जिमप्रकार मांसभक्षी सिंहका चित्त मृगादिकको देखते ही

जितेन्द्रियता आदि समस्त धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥
 मद्यके समान न तो कोई कष्टदायक है, न कोई अज्ञानदायक
 है, न कोई निन्दनीय और महाविष है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष
 मद्य पीकर मत्वाला (पागल) हो जाता है, वह जिस जिसको
 देखता है उसी उसीके आगे निर्लज्ज होकर देखता है, रोता
 है, चिक्कर लगाता है, स्तुति करता है, शब्द करता व गाता
 है, तथा नृत्य करने लग जाता है ॥ ३७ ॥ मद्य जो है सो
 रोगोंको अग्रपथके समान समस्त दोषोंका मूल है, अतएव
 इसका सदैवके लिये त्याग ही रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न हुआ, मधुमक्षियोंकी
 मूठन, श्लेच्छभीलोंकी लारसे मिला हुआ, महापापदायक
 मधु (सहृद) दंयालु पुरुषोंको सर्वथा भक्षण करना योग्य
 नहीं है ॥ ३९ ॥ अनेक जीवोंसे भरे हुए सात ग्रामोंके
 जल-नेमें जितना पाप होता है, उनना पाप मधुके एक कण-
 भक्षण करनेमें लगता है ॥ ४० ॥ जो धर्मात्मा पुरुष होते
 हैं, वे मक्षियोंके द्वारा एक एक पुष्प लाकर वमन किये हुए
 उच्छिष्ट अपवित्र मधुको कदापि भक्षण नहीं करते ॥ ४१ ॥
 मद्य पांस मधुमें प्रत्येकके रसानुसार भिन्न २ ज्ञानिके जीव
 होते हैं, वे सबके सब निर्दयी जीवोंके द्वारा भक्षण किये
 जाते हैं ॥ ४२ ॥

जो नीच पुरुष प्रत्यक्ष जीवोंके भरे हुए पांच प्रकारके
 (बटके फल, पीरलके फल, बटाल, गूलर, उमरकल) उद्दु-

वरकल खाते हैं, उनके चित्तमें दया कहाँसे हो सकती है ?
 ॥ ४३ ॥ जो सात्त्विक जिनानाशके पालनेवाले और श्रीनरि
 साके त्यागी हैं, उनको पांच प्रकारके उद्वेगकल मर्चया
 छोड़ देना चाहिए ॥ ४४ ॥ इनके अतिरिक्त जीवोत्पत्तिके
 कारण कंद मूल फल पुष्प नवनीत और ऐसे अन्नादिक
 भी दयावान् पुरुषोंको छोड़ देना चाहिए ॥ ४५ ॥

दमरे काम क्रोध मद ड्रेष लोभ मोहादिके बशीभूत हो
 कर परको पीड़ाकारी बचन बोलना स्वहितवर्षक पुरुषोंको
 छोड़ देना चाहिए । ४६ । जिनबचनोंके बोलनेसे धर्मकी
 हानि हो, लोकसे विरोध हो, विश्राम नष्ट हो जावे, ऐसे
 वचन क्यों कहना ? । ४७ । जिस वचनसे नाचता उत्पन्न
 हो, जिस असत्य वचनकी श्लेच्छ लोग भी निंदा करें,
 ऐसा असत्य वचन श्रावक जन हृदि नहीं बालते ॥ ४८ ॥

नासरे—तेजमें भावमें स्थितिज्ञानमें (तुल्यमें) गौशाला
 लामें पत्तनमें (नगरमें) जन्में और पार्वतमें भूजे हुए गिरे
 ए दगाए हुए गड़े दूए गवने दूए वा स्थानन किए हुए
 ना दिए हुए [मालिककी आज्ञाके बिना] पर द्रव्यको
 मान्यके समान देखते हुये पतनपमे भीन बुद्धिवान पुरुष
 तापि मदगा नहीं करने कर्मादि अनादिक है, सो जीवोंके
 अन्त कार्योंका भावनेवाले नाशके प्राण हैं, सो उनके
 जानेपर पशुप पायः शीघ्र हो सर जाते हैं ॥ ४९-५०
 ॥ जिसने किसीका द्रव्य हरा अपने उसके समस्त

सुखोंके देनेवाले धर्म बन्धु पिता पुत्र कांति कीर्ति बुद्धि-
 स्त्री आदिक सब हरे ॥ ५२ ॥ मरण होनेमें तो एक क्षण
 भरके लिये एक जीवको ही दुःख होता है, परन्तु द्रव्य
 नाश होनेपर मनुष्यको सकुटुम्ब समरभर दुःख होता है ॥
 तथा मच्छ व्याघ्र व्याघ्र आदिक निरन्तर दुःख देनेवालोंसे
 भी चौर अधिक पापिष्ठ होता है ॥ ५४ ॥ जो नर परद्रव्य
 ग्रहण करता है, उसको इस लोकमें तो राजादिकसे सर्व-
 स्वहरणादि घोर दण्ड मिलता है और परलोकमें नरकके
 दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

चौथे--नरकरूपी कूपका मार्ग, स्वर्गरूपी घरमें जानेसे
 अटकानेवाली खाई जो परस्त्री, उसके सेवनका त्यागकर
 ब्रती पुरुषको स्वदारसन्वोषव्रत धारण करना चाहिए ॥
 जो स्वर्गमोक्षादिके सुखमाप्तिकी इच्छा रखते हैं, उन पुरु-
 षोंको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त सब स्त्रियोंको माता सहन
 बेटीके समान देखना चाहिये ॥ ५७ ॥ परस्त्री अत्यन्त
 ज्ञेय्युक्त होनेपर भी दुःख देनेवाली है, निर्मल (सुन्दर) होनेपर
 भी पापरूपी मलका करनेवाली है, रसकी आधार होनेपर
 भी लृप्ताको बढ़ानेवाली है, जडतासहित होनेपर भी आ-
 तापका बढ़ानेवाली है, अपना सर्वस्व देनेपर भी द्रव्य हरने-
 वाली है, इसप्रकार विरुद्धाचारसे प्रवर्त्तित होनेवाली जो परस्त्री
 सो दूरसे ही त्यागने योग्य है ॥ ५८--५९ ॥ यद्यपि
 स्वर्गा और परस्त्रीके सेवनमें कुछ भी विशेष नहीं है, परन्तु

परस्त्री सेवन करनेवाला तो नरक जाता है और स्वदार-
सन्तोषी स्वर्गही जाता है, कारण यही है कि स्वस्त्रीकी अपे-
सा परस्त्री सेवनमें अनुराग अधिक होता है. और पदच्छेद
में राग करना ही दुःखका मुख्य कारण है ॥ ६० ॥ जो
स्त्री अपने पतिको छोड़कर निर्लज्ज हो परपुरुषके साथ रमण
करती है, उस परस्त्रीपर किस प्रकार विद्वान् किया जाय ?
॥ ६१ ॥ परस्त्रीको रमणीय देखनेसे सुख न होकर भाङ्ग-
लता और नरकमें ले जानेवाले घोर पाप होनेके सिवाय
कुछ भी प्राप्ति नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके संगमात्रसे समस्त
लोकसम्बन्धी हानि हो, ऐसी परस्त्रीको स्वदारसन्तोषिता
छोड़कर किस कारण सेवन करते हैं ? ॥ ६३ ॥ जो पुरुष
कायरूप अग्निमें सतत परस्त्रीको सेवन करता है, वह नाकमें
साक्षात् वज्राग्निसे संतप्त (जल) की हुई लोहमयी छीसे
(पुनलीसे) बिगड़ाया जाता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार पर-
स्त्रीका क्रोधिन यमराजकी दृष्टिके समान प्राणसंहारिणी
मानकर विद्वानोंको सर्वत्र छोड़ देना चाहिये ॥ ६५ ॥

पांचवें-जिस प्रकार दुःमद हाथकी देनेवाली अग्नि
जलसे श्रवण की जाती है, उसी प्रकार बड़ा दुःख अगना लोभ
सन्तोषीपरके श्रवण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ जो मनोपव्रत-

धारी हैं, उनको चाहिये कि—घन धान्य पृथ क्षेत्र द्विपद-
चतुष्पद आदिका परिमाण कर लें ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार
काष्ठके डालनेसे अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार कषायोंके
छोटनेसे धर्म और स्त्रीके संगसे काम और लोभसे लोभ
बढ़ता है ॥ ६८ ॥ नहीं जाता हुआ लोभ मनुष्यको भया-
नक नरकमें ले जाता है, सो ठीक ही है, जो ब्रह्मवान् बेरी
होते हैं, वे क्या २ कष्ट नहीं देते ? ॥ ६९ ॥ उपार्जन की
हुई धन संपदाओंके भोगनेवाले तो बहुत हैं, परन्तु जब यह
जीव उस आरंभसे उपार्जन किये हुये पापका फल नरकमें
सहता है तो उस वक्त ये धन सम्पदाओंके भोगनेवाले पुत्र
कलत्रादि कोई भी सहायक नहीं होते ॥ ७० ॥ जिस
मनुष्यके निश्चल संतोष है, उसके देव तो फिकर हैं, कल्प-
वृक्ष उसके हाथमें ही हैं, निधियें अपने घरमें आई हुई हैं,
ऐसा सम्भ्रान्ता चाहिये, क्योंकि इन सब सुखदायक संपदा-
ओंके होनेपर भी जिनके चित्तमें संतोष नहीं है, वह सदा
दरिद्र और दुःखी ही है ॥ ७१—७२ ॥

२—इन पांच अंगुष्ठोंके सिवाय दिशा, देश और
अनर्थदण्डसे विरक्त होना सो तीन प्रकारके गुणग्रत हैं,
आवकोंको ये तीनों गुणग्रत मन वचन कायसे धारण करना
चाहिये ॥ ७३ ॥

प्रथम तो दशों दिशाओंमें विधिपूर्वक जाने आनेका
परिमाण करके उससे आगे नहीं जाना सो पहिला दिग्ग्रत-

नामा गुणवत् है ॥ ७४ ॥ इस गुणवत्के धारण करनेसे मर्यादाके बाहर वस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंका हिंसाका सर्वथा त्याग हो जानेसे वस धावरके घरमें रहते भी मर्यादासे बाहर महाव्रत होता है ॥ ७५ ॥ जिसने यह दिग्ब्रत धारण किया, उसने तीन लोकको उल्लंघन करने वाली लोभरूपी अग्निका स्तंभन किया अर्थात् करना लोभ पटाया ॥ ७६ ॥

दूसरे-दिग्ब्रतमें जो दशों दिशाओंका परिमाण किया, वन दशों दिशाओंमें कोई भी प्राणी एक दिनमें नहीं जा सकता इस कारण प्रतिदिन, सात दिन, १५ दिन अथवा महीने भर इत्यादि कालकी मर्यादामें क्षेत्रका परिमाण कर लेना सां दूधरा देशव्रत है. इसका फल उपर्युक्त गुणवत्के समान तथाज्यक्षेत्रमें महान्त पालनेका भा और भी अधिक होता है, सा ठाकुरों का है विशेष कारणसे विशेष भावे क्यों न हो ?

तीसरे-व्यर्थ होना इसके स्थापनेका इच्छा रखनेवालों को धर्मकार्योंमें अनुराग और पापकापों से सहायक ऐसे पाच प्रभारक अनर्थोंका त्यागना चाहिये । ७९ । दयावान् धावरको चाहिये एक दिनके कारण प्यूर कुत्ता बिड़ी मैना नोता कुक्कुरोंका एकद्वार पालन पोषण न करें

(१)

तथा फांसी डंढा विष शस्त्र हल बन्धन रज्जु अग्नि घात्री लोहा नीच इत्यादि हिंसाके कारण मांगे हुये न दें । ८१ । इसके अनिरिक्त जिनमें जीवोत्पत्तिकी पूर्ण संभावना हो, ऐसे संधान (आचार मूरुखा) फूलने आई हुई चीज बीचे हुये (सडे हुये) पदार्थका भक्षण भी कदापि न करें ८२

३-सांमायिक उपवास भोगोपभोगपरिमाण और अतिविसंविभाग ये चार प्रकारके शिखाव्रत (मुनिव्रतकी शिक्षा देनेवाले) हैं । ८३ ।

प्रथम-जीवन मरण सुख दुःख योग विपोगादिकमें समान भाव रखकर निरालस्य हो नित्य सांमायिक (संध्यावन्दन) करना चाहिये । ८४ । सांमायिकके समय पर-वस्तु तथा अन्धान्य समस्त कार्योंसे विरक्त होकर समभाव-पूर्वक दो घ्रासन (फायोत्तर्ग वा पद्मासन) द्वादश (एक एक दिशामें तीन तीन) घावर्त्त और चारो दिशाओंमें चार नमस्ति करके त्रिकाल वन्दना (सांमायिक वा संध्यावन्दन) करें ॥ ८५ ॥

दूसरे-पर्वचतुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशांके दिन) समस्त प्रकारके आरंभ और भोगोपभोगादिका त्यागकरके उपवास करना चाहिये । ८६ । जिस उपवासमें पांचों इन्द्रिय अपने अपने विषयसे निवृत्त होकर आत्मानें ही स्थिर होय, किसी विषयमें भी चलायमान न होय इसप्रकार ब्रह्मेन्द्रियता के साथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्त दिन

रात ध्यान स्वाध्यायमें ही बिताया जाय, इसीको भगवान्ने उपवास करना कहा है ॥ ८७-८८ ॥

सीसरे-भोग (जो एकवार भोगनेमें आवे) उपभोग (जो बारबार भोगनेमें आवे) का परिमाण [गिनती] करके शेषको छोड़ देना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है, जिसमें पुष्पमाला गन्धलेपन वकाश तांबूल भूषण स्त्री वस्त्र सवारी आदिका निन्यमति परिमाण करके व्रतकी इच्छा रखनेवाले मज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ८९-९०

चौथे--घर पर आवे हुये भारभत्यागी जितेन्द्रिय उत्तम श्रावक [चुल्लुक महल्लुक] आदिका मुनि अर्निकादि अनियंत्रित लिये भक्तिपूर्वक अन्नान्न औषध आदिकका विभाग करना अर्थात् दान करके सेवन करना सो अनियंत्रितविभाग है, सो श्रावकमात्रको करना चाहिये । ९१ । जो भक्त पुरुष है, उनको चाहिये कि कठिनमे दे मन्त्र निवृत्ता, ऐसे संसारका [भ्रमणका] नाश करनेके अर्थ विनयपूर्वक चार प्रकारका वायुक्त आहार मुनि अर्निका और श्रावक आदिवाके लिये निन्यमति प्रदान किया करें । ९२ । मुनिको दान देने समय श्रावकको अर्द्धादिक दान रके सप्तगुणमहित नवधाभक्तिपूर्वक प्रीतिके साथ पवर्तना चाहिये क्योंकि बिना भक्तिके दिया हुआ दान फलदायक नहीं होता है ॥ ९३ ॥

इन १२ व्रतोंके पालनेवाले वृद्धिमान मत्पुरुषोंको

चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य मरणकाल आ जाये तो अपने कुटुंबियोंको पृथक्कर सहेखना [सन्यासपूर्वक मरना] धारण करै ॥ ९४ ॥ प्राणांतके समय गुरुजनोंके सम्मुख ज्ञानसहित दर्शन और चारित्रिक शुद्ध करनेवाले दोषोंकी आलोचना करके चार प्रमांगके आहार और शरीर से रागभार छोड़ दे ॥ ९५ ॥ जो सुधी पुरुष कषाय निदान और मिथ्यान्व रहित होकर सन्यासविधिको धारणपूर्वक मरणा करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोगकर ७१ भवके भीतर २ मोक्षण्डको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इसप्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनैन्द्र भगवानने कहे हैं सो जो कोई संसारसागरमें पड़नेके समयमें डरनेवाला इनको धारण करने से, वह सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त होता है ।

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रियवृत्ति श्रवक है, सो भू नेत्र हंकार कानगुलि आदिकमें इमांग करनेका और लोलुपताका त्याग करके व्रतोंको बढ़ानेवाला मोनधारणपूर्वक भाजन करता है तथा ॥ ९८ ॥ जो सुरनरकर चरणपूजित हैं ऐसे निर्दोष पंचपरमेष्ठकी नैवेद्य गन्ध अक्षत दीप धूप पुष्पादिसे नित्यपूजा करना चाहिये ॥ ९९ ॥

इस पृथ्वीय श्रावकव्रतको जो अतिचाररहित पालन करते हैं वे पुरुष मनुष्य और देवोंकी सम्पदा पाकर निष्ठाप हो निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ व्रतकी प्रशंसा करनेवाली समस्त पालका करनेवाली जिनमति यतिका वाणी

तो द्विगुण विधि करना चाहिये अर्थात् १० वर्ष और दश महीने तक उपवास करना चाहिये, क्योंकि इसप्रकार यदि नहीं किया जाय तो व्रतविधि पूरी कैसे हो ? । २३ ।

चौथे—संगारको (भयभ्रमणको) नष्ट करनेवाले अपय धातार औषध और सास्त्र इसप्रकार ये चारों दान भी नित्य प्रति देना चाहिये । २४ ।

जीवोंको सबसे अधिक मिय प्राण हैं, इस कारण जीवोंको रक्षा करना अर्थात् समस्त दानोंमें अभयदान करना ही श्रेष्ठ है, क्योंकि प्राणोंमात्र जो कुछ घंटा रोजगारादि आरंभ करते हैं, सो एकमात्र अपने जीवनको रक्षाके लिये ही करते हैं, इस कारण जीवोंको से अधिक श्रेष्ठ कोई भी दान नहीं हो सकता ॥ २५-२६ ॥ पुरुषोंके धर्म धर्म बान और मोक्ष है चारों पुरुषोंका आधार जीवन है, सो जिसने जीवनदान दिया, उसने क्या तो नहीं दिया अर्थात् सब कुछ दिया और जिसने प्राण हर लिये उसने वादी क्या छोड़ा ? सब कुछ हर लिया ॥ २७ ॥ जगत्में सबसे बड़ा भय है, परन्तु मृत्यु भयके बगैरा कोई भी अन्य भय नहीं है, इस कारण पुण्डितानोंको चाहिये कि जिस प्रकार बने नदी का जीराजा करते हैं ॥ २८ ॥

पुण्डितानोंको लिये मृत्यु का प डगीर है और जीवोंकी रक्षा अत्यन्त दिना नहीं होती, इस कारण पुण्डितानोंको प्राण दान भी करना देना चाहिये ॥ २९ ॥ ॥ २९ ॥

दुर्भिक्ष पड़ता है तो अनेक जन लुप्यांति करनेके लिये अपने अतिशय प्यारे बालकशोतकको बेच देते हैं, इसका प्यारा आधार जो है सो पुत्रादिकोंसे भी अधिक प्यारा है ॥ ३० ॥ संमारी जीवोंको इस सर्वनाश क्षुभारूपी दुःखसे बड़ा और कोई भी दुःख नहीं है, इस कारण जिसने आधार दान दिया उसने क्या तो नहीं दिया ? और आधारको नष्ट करनेवालेने क्या नहीं दण्ड दिया ॥ ३१ ॥ अन्नदान जो है सो मनुष्य तो कानि कानि बल बाँधे यश बन निद्रि बुद्धि शत्रु सद्यः सनादिक देता है, इसी कारण जगतमें दानी पुरुष ही सुखी और गुच देखाये होते हैं ॥ ३२ ॥ जो शरीर-रक्षा करने की शक्ति रक्षायत्न करने है, वह शक्त सुखी मण्डल में मन्त्र विनीत है, इस कारण परोक्ष ही हनि-येवे अपने मन्त्र विनीतों को जो अन्न दान ही किया करते हैं ॥ ३३ ॥

[illegible]

ना श ६ द्वय राग ५६ मन्तर मूर्च्छा कांच लाभ भय

मैशाली बेया किंग प्रहार मुखदायक हो सकी है।
॥४२॥ नष्ट मग है जब संभव योग निमिष, ऐसा पुण्य
रतिमें मोहित गिर होकर मय मांस मक्षण काने। श्री
बेयाका मुख मुख-करना है, उसके प्रत्यूरी रत्न कि-
मकार रई मकना है ? ॥ ४३ ॥ जो नायाचारी मूढ़ सर्व-
काल बेवचाने नशाभूत हो पुण्य समय वाचक और वाचाशौच
(मरु देशकी) समुद्रका उहा नहीं मानता, उसको शीत
पुरुषेंद्रा । आगाने वाच्य उसके प्रत्येक कहा ? ॥ ४४ ॥

[illegible]

मा - तुम तुम हीन तुमने उनका भण्डारमें
नष्ट कर दिया है। तुम हीन तुमने उनका भण्डार
जून गोलियाँ भी तुम हीन तुमने खड़ा है। वाशिये
॥४७॥ तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन
कहत हैं। तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन
और अन्य भी तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन तुम हीन

३-जो श्रावक इन्द्रियरूपी घोड़ोंको दमन करने और
अमिय और मित्र यशुमें सपनाभाव रखता हुआ विमर्श
सामायिक करना है, उसको प्रवीण पुरुषोंने तीसरी साम-
यिक प्रतिपादक धरक सामायिकी श्रावक कहा है ॥१५॥

४-जो नर भोगोरमोग पदार्थोंसे वित्त हटाकर भारमें
रहित चारों पक्षोंमें (दो सदृश दो चतुर्शोंके विन)
हमेष्टद उपनाम किया करता है, वही चौथी प्रापवर्णितमाका
धाराक विद्वानोंका एवम प्रोपथो श्रावक है ॥ १६ ॥

५-जो श्रावक समस्त जीवोंकी कृपा करनेमें तत्पर
होकर समस्त प्रकारके सचित्त पदार्थोंको छोड़ मामुक्तजन्म
जटादि, भोजन पान करना है उसको पतिपोंके नाथ गण-
पर गव नरे पांनरी - (वित्त त्यागवर्णितमाका धरक सचित्त
विमर्श) धरक कहा है ॥ १७ ॥

६-जो नंदगर्भों वा गोमूत्र में मल्लीसेवनका त्याग
करने, उ. वसना नंदपुत्र न चन्दनद पाने योग्य छठी
दिने ॥ १८ ॥ धरक नाति दिने मुन्यामी श्रावक
कहा है ॥ १८ ॥

७-जो श्रावक पदार्थोंके दूषणके गर्वको
पदार्थोंके गर्वको ॥ १९ ॥ जीवनादे श्रावक वद चरणी
वर्णित ॥ १९ ॥ जीवनादे श्रावक वद चरणी
हो ॥ १९ ॥ धरक धरक धरक धरक धरक धरक
कहा है ॥ १९ ॥

८-जो धर्मात्मा श्रावक सर्वमकारकी जीवहिंसाके कारणोंको जानकर राग द्वेषादिको मन्द करके सब प्रकारके अनारंभोंको छोड़ देता है, उसको यथार्थ ज्ञानके धारक पुरुषोंने आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमाका धारक अनारंभी श्रावक कहा है ॥ ६० ॥

९-जो श्रावक अन्कृष्ट कषायरूपी शत्रुओंको मर्दनकरके जीवहिंसाके कारणरूप परिग्रहको जानकर तृणके समान त्याग कर देता, उसको गणधरोंने नववीं परिग्रहत्याग प्रतिमाका धारक अपरिग्रही श्रावक कहा है ॥ ६१ ॥

१०-जो गृहकार्योंमें विविध प्रकारके जीवोंको अग्निके समान तापकारक सम्मति देनेका त्याग कर देता है, उसको हानी पुरुष दशवीं अनुमतित्याग प्रतिमाका धारक अनुमतित्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६२ ॥

११-जो जितेन्द्रिय धारक अपने अर्थ किये दूर भोजनया मन बचन कायने रोगारकें मुनियोंके समान अनुदिष्ट पानु भोजन करता है, उसको ग्यारहवीं उदिष्टत्याग प्रतिमाका धारक उदिष्टत्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६३ ॥

इसप्रकार क्रमसे असादरतिन पलादश पदोंको धारण कर धारकाधारको पालन करता है, यह दशमनुष्यकी मुख्य सम्पत्ति है अन्विष्ट ही समस्त कर्मात्मा नष्ट करके सिद्ध पदों (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त समस्त प्रयोगोंमें, धारोंने चन्द्रमाके समान, समस्त

सातों प्रकृतियोंके शमन होनेसे उत्पन्न होता है, उसको
 शामिकसम्यक्त्व कहते हैं. और यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त ही
 रह सक्ता है और इन सातों प्रकृतियोंके कुछ क्षय और कुछ
 शमन होनेसे उत्पन्न होता है उसको पैदकसम्यक्त्व तथा
 मिश्र वा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं ॥ ६९-७० ॥
 जो सम्पगृष्टि जिनमतके तत्त्वोंमें शंका नहि करै (१)
 सांसारिक मुखोंकी बांछा नहि करै (२) घर्मात्मा रोगी
 दरिद्री आदिक जैनोंमें ग्लानि नहि करै (३) कुदेव कुगुरु
 और कुधर्ममें विशुद्धचित्त हो मोहको (अज्ञानभावको) प्राप्त
 न होय [४] संयमी मुनि श्रवकोंके दोषोंको छिपावे (५)
 और अपने तथा उसके परिश्रम निजमें स्थिरता करै (६)
 घर्मात्माओंसे अन्वयगदित वात्सल्य रखे (७) बहिमा
 धर्मकी महिमा [प्रशंसा] बढ़ावे (८) संवेग [संसारसे
 भयभीत] होकर [९] वैराग्यरूप [१०] पन्द्रकपाय रहै
 [११] अनादिता करे [१२] अपनेको प्राप्त हुये
 दासोंका निन्दन करे [१३] पंचममेषामें निजप्रति भक्ति
 करे [१४] द्वारद्वाररूप स्रमे ही अतिगन करनेमें
 अपना इच्छा रखे [१५] मरुत जीवांग पैत्राभाव रखे
 १६ वाग्मिगम्यांका [गुणाधिक्य पृथ्वीका] देवदर
 प्रोदत [१७] विमान चेष्टावालोंमें मधुस्य रह [१८]
 और सांसारिक कदाचारोंसे विरक्त रहै [१९] दरी वर
 पुरुष वनरूप धान्यके बीजपूत, दोनोंका दुर्लभ, मनसा

सुखोंके देनेवाले, विद्वानों हर पूजनीय, सम्पत्त्यकरी रत्नको
विद्वद् (निर्भल) काता है. और उसी गुरुका जन्म
पशेला करनेयोग्य है ॥ ७१-७५ ॥

[illegible]

८२ ॥ तत्पश्चात् वह पवनवेग मुनि महाराजको नमस्कार-
 पूर्वक कहने लगा कि हे मुने ! आज मेरे समान कोई भी
 धन्य नहीं है, जो नरकरूपी कूपमें पड़ता हुआ आपके वच-
 नरूपी आलम्बनको प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ जो नर आपके
 वचनोंको सुनता है, वह भी मनवांछित फलको प्राप्त होता
 है तो जो एकचित्त हो आपके वचनोंके अनुसार चलता है
 उसका फल कैसा उत्तम होगा सो कहनेमें कोई भी सपर्य
 नहीं है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य आपके वचनोंको सुनकर कुछ
 भी नहीं करते, वे निश्चय करके मनुष्य नहीं हैं क्योंकि
 रत्नभूमिमें प्राप्त होकर पशु ही खाली हाथों जाता है, मनुष्य
 कदापि खाली हाथ नहीं आता ॥ ८५ ॥ इसप्रकार वह
 पवनवेग निर्दोष वचनोंको कहकर व्रत ममितिवाले मुनिस-
 मूढसहित केवली भगवानको प्राणिपूर्वक नमस्कार करके
 अपने मित्र मनोवेग सहित विजयार्द्ध पर्वतपर अपने घर
 जाता हुआ ॥ ८६ ॥ उस पवनवेगका जैनशर्मावलंबी देख
 कर मनोवेग बहुत ही हर्षित हुआ, सो नीति ही है कि अपने
 किए हुए परिश्रमको मत्त होनेपर ऐन कौन पुरुष है कि
 जिसके हाथमें प्रोद न हो ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् मनो-
 हर आभूषणोंके धारक वे दोनों मित्र चार प्रकारके पवित्र
 श्रावक धर्मको हर्षक सा धारण करते हुए परस्पर महा-
 प्रीतिरूपी बन्धनसे अन्तः अन्ते चित्तको बांधे हुए सुखसे
 अपना समय बिताने लगे ॥ ८८ ॥

भाषानुवादकर्त्ताका परिचय ।

—:०:—

पद्धतिछंद.

सब देशनमें भारत सुदेश, तहं राजपुताना इक प्रदेश ॥
तामें मरुभूमी है प्रवान, तहं राज्य सु वीकानेर जान ॥ १ ॥
अहो राज्य को नृप बहादुर, श्रीगंगासिंह हजर शूर ॥
सा राज्यनाहि नहि इति भीति, राजा स्वप्रजासे करत प्रीति ॥ २ ॥
तहं जसरासर शुभ प्र म एक, जहं वान कहि जैनी अनेक ॥
सब जैनी जाति खंडेलवाल त में सुवंश याकजीवाल ॥ ३ ॥
ता वंशमाहि इक अमरचंद, तिनके सुन चार भये सुनंद ॥
तिनके इक नानकराम नाम, निवसे सुजानगढ नाम धाम ॥ ४ ॥
तिनके सुन अठ भये सुजान, तिनमें अब चार हि वर्त्तमान ॥
गुरु धनलालजी मति अमद, तिनसे लघुभ्राता रतनचन्द ॥ ५ ॥
तिनके लघु पन्नालाल मान, सबसे नृप नथमज भ्रातजान ॥
तिनमें मैं पन्नालाल नाम, सो गयो मुगदाघाद धाम ॥ ६ ॥
तित श्रीयुत मुन्शी मुकंदराम अरु पण्डित चुन्नीलाल नाम ॥
इन विद्वज्जनके चरणपास, रहिकर विद्या गहि मति प्रकाश ॥ ७ ॥
फिर आयो मुंबई शहर माहि, जहं सज्जन जनकी कमी नाहि ॥
तिनमें पण्डित गोमालदास, रहते ये धन्नालाल पास ॥ ८ ॥
इन सुजन जननका संग पाय, वृपरहस सुना हियद्वये लाय ॥
साकारण मो मति कुछ पवित्र, अनुवाद-रचनमें भइ विचित्र ॥ ९ ॥

